श्री अरविन्द कर्मधारा

सितंबर-अक्टूबर

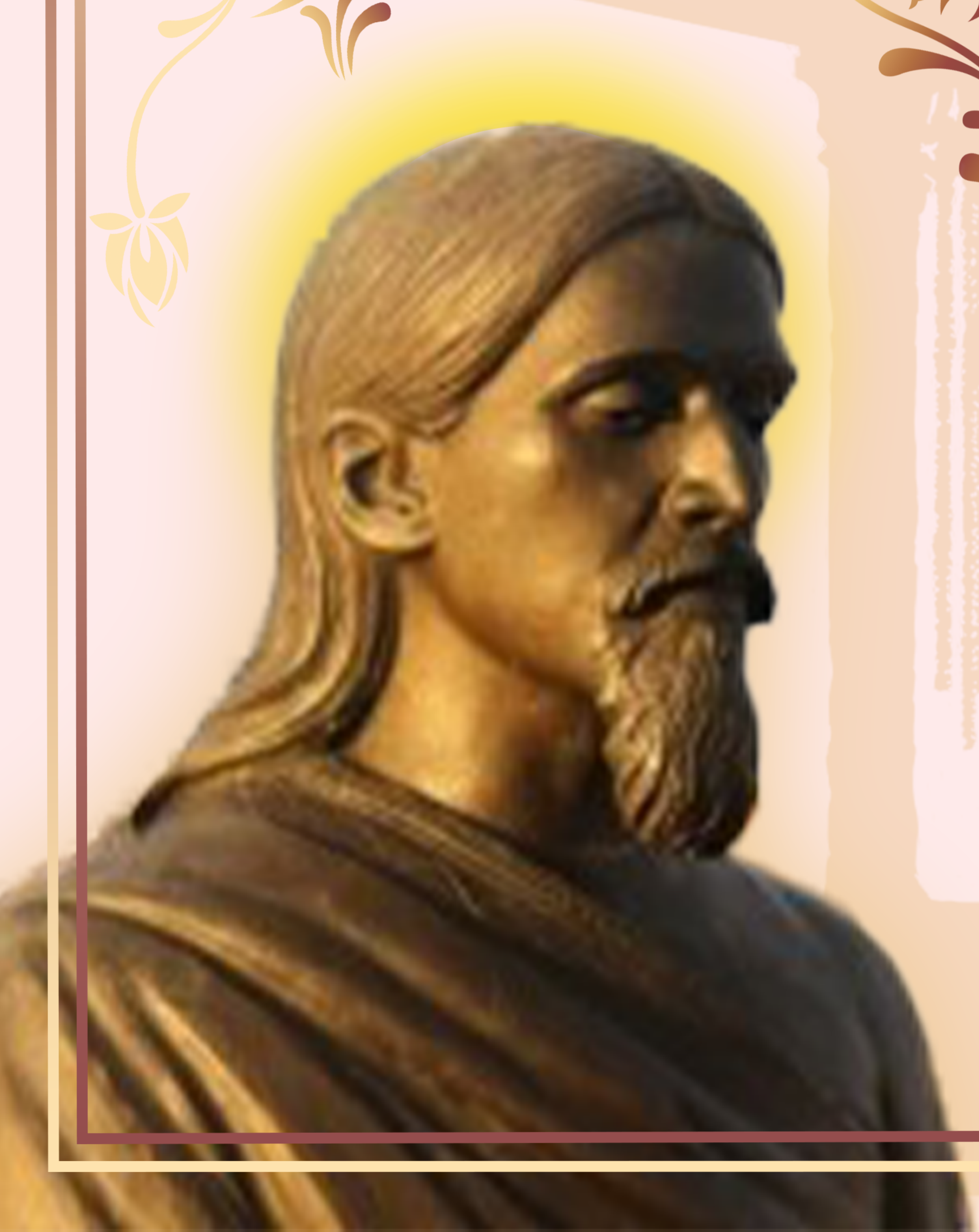

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम

दिल्ली शाखा का मुखपत्र

सितंबर - अक्टूबर-2022

अंक -5

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन

अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

सुश्री तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द

आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

प्रार्थना और ध्यान

प्रकृतिस्थ निदिध्यासन की उस निश्चलता में जो और किसी भी समय की अपेक्षा पौ फटने से पहले आती है, हे हमारी सत्ता के स्वामी ,मेरा विचार तेरी ओर उत्कट प्रार्थना में उठता है।

वर दे कि अब जो दिन शुरू होने को है वह धरती के लिये और मनुष्यों के लिये जरा अधिक शुद्ध प्रकाश और सच्ची शांति लाये। तेरी अभिव्यक्ति अधिक पूर्ण हो और तेरा मधुर विधान अधिक मान्यता-प्राप्त हो। कोई उच्चतर,उदात्ततर, सत्यतर वस्तु मानवजाति पर प्रकट हो। वर दे कि अधिक विशाल और गभीर प्रेम प्रसार का हो ताकि सभी पीड़ादायक व्रण स्वस्थ हो जायें और सूर्य की यह पहली किरण जो अब पृथ्वी पर प्रकट होने को है,आनंद और सामंजस्य की घोषणा करनेवाली हो,वह जीवन के सारतत्व में छिपी महिमामय भव्यता का प्रतीक हो।

हे दिव्य स्वामी,वर दे कि हमारे लिये यह दिन ,तेरे विधान के प्रति अधिक पूर्ण उत्सर्ग की ओर उद्घाटन हो,तेरे कर्म के प्रति अपनी अधिक सर्वांगीण भेंट हो,अपनी अधिक पूर्ण विस्मृति ,अधिक महान आलोक ,शुद्धतर प्रेम हो। वर दे कि तेरे साथ सदा-सर्वदा बढ़ते हुए सायुज्य में हम अधिकाधिक एक होते जायें ताकि हम तेरे योग्य सेवक बन सकें। हमारे अंदर से समस्त अहंकार और तुच्छ घमंड,समस्त लोभ और अंधकार को दूर कर दे ताकि तेरे दिव्य प्रेम से प्रज्ज्वलित होकर,हम जगत में तेरी मशालें बन सकें।

मेरे हृदय से पूर्व की सुवासित धूप की श्वेत धूम्र रेखा की तरह तेरी स्तुति में मौन भजन उठता है। और पूर्ण समर्पण की स्वच्छता में ,उदय होते हुए इस दिन के प्रकाश में मैं तुझे प्रणाम करती हूं।

...... श्रीमां (२८ नवंबर १९१३)

संपादकीय

प्रिय पाठकों,

श्री अरविंद की इस 150 वीं वर्षगांठ के पुण्य वर्ष काल में हम यथा सम्भव रूप से उनकी शिक्षाओं के प्रति ग्रहणशील रहने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

श्रीअरविन्द के दर्शन का अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष उसका विकासवाद है। सृष्टिक्रम में विकास विविध सोपानों के संकेत हमारी प्राचीन परम्परा में उपलब्ध हैं। उपनिषत्कार अन्नमय से लेकर आनन्दमय कोष तक चेतना की यात्रा का उल्लेख करता है। जगत् में एक निश्चित विकास है-जड़ वस्तु, संवेदनशील प्राणी, मननशील मानव, विज्ञानमय एवं आनन्दमय ऋषि इस विकास के सोपान हैं। जड़ से वनस्पति, वनस्पति से पशु, पशु से मनुष्य क्रमशः उच्चतर सत्ताएँ हैं। जड़ में निहित जीवन ही था जो क्रमशःविकसित हुआ है । पाश्चात्य विकासवाद इस तथ्य को नहीं स्वीकारता लेकिन भारतीय मानस समझता है कि जड़ में भी ब्रह्म है जो जगत् का आधार है। चेतना के अब तक के विकास–क्रम में मनुष्य सर्वोच्च है लेकिन वह अन्तिम नहीं है। विकास यात्रा थम नहीं गई है । मनुष्य की सत्ता सांक्रान्तिक है। श्री अरविन्द का विकासवाद हमारे लिए भावी के द्वार खोलकर विभिन्न लोकों के दर्शन कराता है। अपने सहज रूप में प्रकृति जिस विकास–पथ पर चल रही है, उसे मनुष्य अपने चेतन प्रयासों से सरल और द्रुतगति दे सकता है मनुष्य की सह सजग साधन शैली श्रीरविन्द का रूपान्तर योग या सर्वांगीण योग है जिसका अनुशीलन मनुष्य को चेतना के उस शिखर तक ले जा सकता है जिसे श्री अरविन्द ने अतिमानस कहा है। श्री अरविन्द ने एक पत्र में लिखा है " केवल अपने लिए ही अतिमानस को प्राप्त करने का मेरा कोई विचार नहीं है- मैं अपने लिए कुछ नहीं कर रहा हूँ क्योंकि मुझे व्यक्तिगत रूप में किसी चीज की जरूरत नहीं है, न मोक्ष की न अतिमानसिक स्थिति की। अतिमानसीकरण के लिए यह जो मैं यत्न कर रहा हूँ, वह इस कारण कि पृथ्वी–चेतना के लिए यह कार्य सम्पन्न करना आवश्यक है। स्वयं मेरा अतिमानसिक स्थिति को प्राप्त करना पृथ्वी-चेतना के लिए अतिमानस के द्वार खोल देने की कुंजी मात्र है।"

- चेतना के शिखर से

जब हम मनुष्यता और मनुष्य की विकास के बारे में सोचते ही श्री अरविंद के पूर्ण योग का मार्ग ही एक मात्र रास्ता दिखाई देता है। जिसमें वे स्पष्ट रूप से मानव जाति के दिव्या रूपांतर की बात करते हैं अतिमानसिक सत्ता के अवतरण की उद्घोषणा करते हैं। साथ ही वे भारत वासियों की शोचनीय अवस्था के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं - 'मेरा मानना है कि भारत की कमजोरी का मुख्य कारण अधीनता, गरीबी, आध्यात्मिकता या धर्म की कमी नहीं है, बल्कि विचार शक्ति का ह्रास, ज्ञान की जन्मभूमि में अज्ञान का प्रसार है। हर जगह मुझे सोचने में असमर्थता या अनिच्छा दिखाई देती है - विचार की अक्षमता या "विचार- भय"। मध्यकाल में भले ही यह सब ठीक रहा हो, लेकिन अब यह रवैया एक बड़ी गिरावट का संकेत है। मध्यकालीन काल एक रात थी, अज्ञानी व्यक्ति के लिए विजय का दिन; आधुनिक दुनिया में यह ज्ञान आदमी के लिए जीत का समय है। जो अधिक सोचकर, अधिक खोज कर, अधिक परिश्रम करके संसार के सत्य को जान सकता है और सीख सकता है, वह अधिक शक्ति प्राप्त करता है। यूरोप पर एक नज़र डालें। आप दो चीजें देखेंगे: विचार का एक विस्तृत असीम समुद्र और एक विशाल और तेज, फिर भी अनुशासित शक्ति का खेल। यूरोप की सारी शक्ति यहीं है।

इस शक्ति के कारण ही वह हमारी प्राचीन तपस्वियों की तरह दुनिया को निगलने में सक्षम है, जिसने ब्रह्मांड के देवताओं को भी आतंक, रहस्य, अधीनता में रखा है। लोग कहते हैं कि यूरोप तबाही के मुहाने पर दौड़ रहा है। मुझे ऐसा नहीं लगता है। ये सभी क्रांतियां, ये सभी परेशानियां एक नई सृष्टि के पहले चरण हैं। अब जरा भारत को ही देख लीजिए। कुछ दानवों के अलावा, हर जगह तुम्हारा साधारण आदमी है, यानी तुम्हारा औसत आदमी, जो नहीं सोचेगा, सोच नहीं सकता, उसके पास ताकत का एक अंश भी नहीं है, बस एक क्षणिक उत्साह है। भारत चाहता है आसान विचार, सरल शब्द; यूरोप गहन विचार चाहता है, गहरा शब्द चाहता है। यूरोप में साधारण मजदूर भी सोचते हैं, सब कुछ जानना चाहते हैं। वे आधी-अधूरी बातों को जानकर संतुष्ट नहीं होते, बल्कि उनमें गहराई से उतरना चाहते हैं। अंतर यहीं है। लेकिन यूरोप की शक्ति और विचार के लिए एक घातक सीमा है। जब वह अध्यात्म के क्षेत्र में प्रवेश करती है तो उसकी विचार-शक्ति काम करना बंद कर देती है। वहाँ यूरोप सब कुछ एक पहेली, अस्पष्ट तत्वमीमांसा, योगिक मतिभ्रम के रूप में देखता है - "यह अपनी आँखों को धुएं की तरह रगड़ता है और कुछ भी स्पष्ट रूप से नहीं देख सकता है।" लेकिन अब यूरोप में भी इस सीमा को पार करने का कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है। हमारे पूर्वजों के लिए धन्यवाद, हमारे पास आध्यात्मिक भावना है, और जिसके पास यह भावना है उसके पास ऐसा ज्ञान, ऐसी शक्ति है, जो एक सांस के साथ यूरोप की सारी विशाल शक्ति को घास के तिनके की तरह उड़ा सकती है। लेकिन इस शक्ति को प्राप्त करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। हालाँकि, हम शक्ति के उपासक नहीं हैं; हम सहज मार्ग के उपासक हैं। लेकिन कोई भी आसान तरीके से शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। हमारे पूर्वजों ने विचारों के एक विशाल समुद्र में तैरकर एक विशाल ज्ञान प्राप्त किया; उन्होंने एक विशाल सभ्यता की स्थापना की लेकिन जैसे-जैसे वे अपने रास्ते पर आगे बढ़ते गए, वे थकावट और थकान से उबर गए। उनकी विचार शक्ति में कमी आई और साथ ही साथ उनकी रचनात्मक शक्ति में भी कमी आई। हमारी सभ्यता एक स्थिर बैकवाटर बन गई है, हमारा धर्म बाहरी लोगों की कट्टरता, हमारी आध्यात्मिकता प्रकाश की एक धुंधली चमक या नशे की क्षणिक लहर बन गई है। जब तक यह स्थिति बनी रहती है, भारत का कोई भी स्थाई पुनरुत्थान असंभव है।

-श्री अरविंद (बांग्ला साहित्य)

साथियों श्री अरविन्द के इन शब्दों में हमारे लिया छुपा सन्देश हमे प्रेरणा देता है, हमें आवश्यकता है उन बिंदुओं पर एकाग्रता पूर्वक ध्यान करने और तत्संबंधी दुर्बलताओं को दूर करने हेतु श्री माँ और श्री अरविंद के बताये मार्ग का अनुसरण करने की। आइए हम प्रतिज्ञा करें कि हम मन प्राण और शरीर से पूरी तरह से प्रभु का यंत्र बनने के लिए समर्पित रहेंगे।

शुभकामनाओं के साथ-

- अपर्णा

विषय-सूची

- संपादकीय — 4
- प्रसाद — 7
- आत्मार्पण — 9
- श्याम कुमारी — 10
- सामूहिक प्रार्थना का महत्व — 14
- सुवर्ण –सुयोग — 15
- चाचा जी के पावन प्रसंग — 20
- अभिलाषा — 22
- चैत्य पुरुष , आध्यात्मिक स्तर , अतिमानसिक अवतरण आदि — 23
- "परमानंद की आवाज" — 30
- आध्यात्मिक शिक्षा – एक आत्मावलोकन — 33
- श्रीअरविन्द का राष्ट्र चिंतन — 38
- आश्रम-गतिविधियाँ — 49

प्रसाद

एक बार मैंने सुबह टीवी खोला तो जगत गुरु शंकराचार्य कांची कामकोटि जी से प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम चल रहा था।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि "हम भगवान को भोग क्यों लगाते हैं?"

"हम जो कुछ भी भगवान को चढ़ाते हैं, उसमें से भगवान क्या खाते हैं? क्या पीते हैं?"

"क्या हमारे चढ़ाए हुए पदार्थ के रुप रंग स्वाद या मात्रा में कोई परिवर्तन होता है?"

"यदि नहीं तो हम यह कर्म क्यों करते हैं। क्या यह पाखंड नहीं है?"

"यदि यह पाखंड है तो हम भोग लगाने का पाखंड क्यों करें?"

मेरी भी जिज्ञासा बढ़ गई थी कि शायद प्रश्नकर्ता ने आज जगद्गुरु शंकराचार्य जी को बुरी तरह घेर लिया है देखूं क्या उत्तर देते हैं।

किंतु जगद्गुरु शंकराचार्य जी तनिक भी विचलित नहीं हुए।

बड़े ही शांत चित्त से उन्होंने उत्तर देना शुरू किया।

उन्होंने कहा

"यह समझने की बात है कि जब हम प्रभु को भोग लगाते हैं तो वह उसमें से क्या ग्रहण करते हैं।"

"मान लीजिए कि आप लड्डू लेकर भगवान को भोग चढ़ाने मंदिर जा रहे हैं और रास्ते में आपका जानने वाला कोई मिलता है और पूछता है यह क्या है?"

"~ तब आप उसे बताते हैं कि यह लड्डू है।"

"फिर वह पूछता है कि किसका है?"

"~ तब आप कहते हैं कि यह मेरा है।"

"फिर जब आप वही मिष्ठान्न प्रभु के श्री चरणों में रख कर उन्हें समर्पित कर देते हैं और उसे लेकर घर को चलते हैं तब फिर आपको जानने वाला कोई दूसरा मिलता है और वह पूछता है कि यह क्या है?"

"~ तब आप कहते हैं कि यह प्रसाद है।"

"फिर वह पूछता है कि किसका है?"

"~ तब आप कहते हैं कि यह हनुमान जी का है।"

"अब समझने वाली बात यह है कि लड्डू वही है।"

"उसके रंग रूप स्वाद परिमाण में कोई अंतर नहीं पड़ता है, तो प्रभु ने उसमें से क्या ग्रहण किया कि उसका नाम बदल गया।"

"वास्तव में प्रभु ने मनुष्य के अहंकार को हर लिया।"

"यह मेरा है का जो भाव था, अहंकार था प्रभु के चरणों में समर्पित करते ही उसका हरण हो गया।"

"प्रभु को भोग लगाने से मनुष्य विनीत स्वभाव का बनता है शीलवान होता है। अहंकार रहित स्वच्छ और निर्मल चित्त मन का बनता है।"

"इसलिए इसे पाखंड नहीं कहा जा सकता है।"

"यह मनोविज्ञान है।"

इतना सुन्दर उत्तर सुन कर मैं भाव विह्वल हो गया।

कोटि-कोटि नमन है देश के संतों को जो हमें अज्ञानता से दूर ले जाते हैं और हमें ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करते हैं।

गीता प्रेस गोरखपुर के संतों की मार्मिक (रहस्यमयी) बातें से साभार

शुभ प्रभात। आज का दिन आपके लिए शुभ एवं मंगलकारी हो।

आत्मार्पण

(1) ज्ञानचन्द्र

प्यास तुम , तृप्ति तुम , ज्योति तुम , तुम तुम्ही ,
तुम परम तत्त्व का सत्य आकार हो ।
प्रश्न तुम, भान्ति तुम, तुम समाधान हो ,
आत्मकेन्द्रीयता का तिरस्कार हो । ।
जिन्दगी का ललित लक्ष्य हो , मार्ग हो ,
स्वप्न का सत्य – प्रत्यक्ष , साकार हो ।
ब्रह्म का ओज हो , सत्य का तेज हो ,
देह का, सृष्टि का मूल आधार हो । ।
ब्रह्ममय दृष्टि का , भूतमय सृष्टि का ,
दो विरोधी ध्रुवों का , सुविस्तार हो ।
अग्नि तुम , शक्ति तुम , तुम अभीप्सा सघन ,
खिन्नता , मूढ़ता का प्रतीकार हो । ।
आपसे भिन्नता , भ्रांति है, दुःख है – आप ही सत्य हैं ,
शेष दुःस्वप्न है –
दिव्य चिच्छक्ति , योगाग्नि , लीलामयी –
सृष्टि – मिथ्यात्व से पूर्ण अविकार हो । ।

(2)

ज्योति बनकर हृदय में बसो चिन्मयी
प्राण में प्राण का सत्य बनकर रहो ।
चेतना में परम चेतना में बन खिलो
अस्थि में , माँस में स्नायुओं में रहो । ।

सर्व – सम्मोहिनी हे त्रिपुरसुन्दरी
सर्वमंगलयी दिव्य सौदामिनी ।
है निराकार की दिव्य आकृति मधुर
व्यर्थ संसार की अर्थमय रागिनी ॥

हे गुणातीत, हे दिव्य त्रिगुणात्मिका
इस अबल भक्त के भाग्य की स्वामिनी ।
पूर्ण संकल्प हो आपका सर्वदा ,
ज्ञानद्रव की परम शुद्ध मन्दाकिनी ॥

आप चाहें वही मैं बनूँ पूज्य माँ
आप गढ़ लें मुझे इष्ट आकार सर्वदा में,
आपका ,आपके ,ही लिए मैं जिऊँ
आप द्वारा करूँ कर्म संसार में ॥

श्याम कुमारी

प्रिय मंजु,

तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर देना असंभव है । उन अचिंत्या का चिम्तन करते –करते मुनि थक गए । वेद – पुराण करते रहे ।

श्रीमाँ मन –वाणी के लिये अगम –अगोचर हैं । केवल योग –युक्त होकर ही जानी जा सकती हैं । उनका कोइ स्वरूप नहीं किन्तु समस्त उनमें है । उनकी सम्पूर्णता किसी रूप में बद्ध नहीं हो सकती, किन्तु समस्त रूप उनके द्वारा रचित हैं । अति गुह्य, अति दुर्लभ है उनका परिचय । घोर घटा में दामिनी द्युति –सी उनकी झलकें कभी- कभी अन्त : दर्शन देकर मानस को ज्योतित कर जाता हैं। देवता भी उनको नहीं जानते । यदि जानते तो इस प्रकार अपने ऐश्वर्य, अपनी पूजा के लिये लालायित न रहते । उन्हीं तो आत्मा –समर्पण कर देते ।

उनका स्वरूप तो अज्ञेय है किन्तु उनकी अपरिमेय महिमा अंशत:बोधगम्य है, गेय है । मानव के लिये उनका स्वरुप वर्णन करने का प्रयास पिपीलिका के पर्वत चढ़ने के समान ही है । हमारी मधुर माँ के रूप –गुण का चित्रण परम प्रभु के अतिरिक्त कौन कर सकता है ? श्रीअरविन्द के शब्दों में :उन्हीं की ज्योति से हमारे समस्त सूर्य ज्योतिर्मान हैं। समस्त संसार उनके अकेले हृदय में आश्रय ले सकता है । वे हैं हमारे कठिन आरोहण की चुम्बक । वे हैं पृथ्वी और आकाश , मृत्यु और अमरत्व के मध्य की स्वर्णसेतु और आश्चर्यजनक अग्नि । जहाँ वे अपने चरण दबाती हैं सम्मोहक आनन्द की चम्तकारी सरिताएँ उमड़ पड़ती हैं । समस्त प्रकृति उनसे प्रार्थना करती है कि अपने दिव्य चरण –स्पर्श से अस्तित्व की पीड़ा हर लें ।

माँ हैं देवताओं , मनुष्यों , असुरों की जननी , ब्रह्माण्डों की स्रष्टी , आल्हादिनी , दिव्य अवरोहण । उनकी दो बाँहें हैं प्रभा के पद्म । जिनके विशाल विकिरण से ही समस्त ज्योतियाँ उद्भूत होती हैं। ज्योति क् सिन्धु हैं उनके दो नयन । अपार ज्योति , अनन्त आनन्द , पुंजीभूत माधुर्य ,चरम शक्ति ,दिव्य चेतना –इन सब की मूर्तिमान प्रतिमा है वे आद्या शक्ति । अगणित ब्रह्माण्ड उनके भ्रू – निक्षेप से बनते – बिगड़ते हैं । उनके एक दृष्टिपात से समस्त कालुष्य भस्म हो जाते हैं, अचेतना चैतन्य हो जाता है । वे ही हैं निराश्रयों की आश्रय , दुखियों की सम्बल ।

किन्तु वे अपने दिव्य लोक में, दिव्य गुणों से परिपूर्ण दिव्यानन्द रूपिणी मात्र ही नहीं हैं । वे हैं कण- कण में परिव्याप्त । वे ही तो जुए के नीचे पशु –रूप में बोझा ढोती हैं । वे ही पुष्प की सुगन्ध और शूल की पीड़ा हैं । वे ही समुद्र तट में पड़ा एक सिकता – कण हैं, वे ही समस्त महासागर हैं । ये उष्मा , ये निशा उन्हीं के कटाक्ष हैं । यह हिमालय उन्हीं की शुभ्र मुस्कान है ।वे ही साम्राज्ञी हैं , भिखारिणी हैं । पत्र –पत्र , धातु –धातु , रज के कण –कण –ये सब उन्हीं के रूप हैं । वे प्रभु –पिया , अमोघ प्रेम –शक्ति हैं । जग को शीतल आध्यात्मिक से ढकने वाली चन्द्रिक हैं । सागरों की तरह का उत्ताल आलोड़न –विलोड़न और उनकी गहरइयों की गहन शान्ति हैं । पर्वत पर हिम –किरीट हैं और चट्टान के गर्भ में छिपी रत्न राशि हैं । जहाँ प्रसन्नता है , हर्ष –उल्लास है , वे मुस्कान बनकर विराजमान हैं । वे हर लहर का किनारा हैं, हर पथ का अन्त हैं ।हम अपने प्रेमी में उन्हीं से प्रेम करते हैं ओर शत्रु में उन्हीं से घृणा क्योंकि शुचि-अशुचि , शिव –अशिव , देव –असुर,सब उन्हीं की सृष्टि हैं । उनसे बाहर कहीं कुछ भी नहीं है ।

माँ अपने महालक्ष्मी रूप में सौदर्य और सामंजस्य की अधिष्ठात्री हैं । प्रेम , माधुर्य और उदारता उन्हीं की कृपा –कोर हैं। यदि माँ अपना महालक्ष्मी रूप उद्घाटित न करती तो प्रणय और वात्सल्य की रस –धारा से वचिंत होकर मानवता रूखे तरु के समान रह जाती । भाव- विलास और ऐश्वर्य जो जीवन को जीने योग्य बनाते हैं – उन्हीं की कृपा है । उनके आनन्द नूपुरों की रुनझुन समस्त अस्तितव में परिव्याप्त है । उन आनन्द –नूपुरों की यह ध्वनि ही अणु –परमाणुओं को संघटित करती है । सुमन की सुगन्ध में, पक्षियों के कलरव में , माँ के वात्सल्य में ,प्रणय के आत्मदान में उन्हीं का लीला नूपुरों ध्वनित होता है । कभी शिशिर के शीत तुषार कणों को कमल –पत्रों पर हीरक कणी – सा चमकते देखोगी तो जान लेना माँ की मुस्काने चमक रहीं हैं । वृक्षों के पुष्पों को देखोगी तो जान लेना कि माँ की मुखश्री है । मखमली घास थके चरणों को अपने हृदय की कोमलता से विश्राम दे रही हो तो जान लेना वह माँ का कोमल क्रोड़ है । जहाँ शेफाली सुमन झड़ रहे हों वहाँ जान लेना उनकी करुणा बरस रही है , जहाँ मकरन्द उड़ हो वहाँ जान लेना उन्होंने फाग खेला है । प्रकृति के समस्त सौंदर्य और विभूतियाँ महालक्ष्मी का प्रसाद हैं। जीवन में जहाँ सामूहिक माधुर्य हो वहाँ उन्हें उपस्थित समझना । जब प्रेमी और प्रेमिका में आत्मदान की होड़ लगी हुई हो तो समझ लेना वहाँ महालक्ष्मी का निवास है । जहाँ उदारता से सत्पात्र को दान दिया जाता हो तो वहाँ उनका स्पर्श जानना, जहाँ हँसते –हँसते जीवन –गरल को अमृत में परिवर्तित होते देखो वहाँ उन्ही को उपस्थित मानना । जहाँ सब सुन्दर और शिव हो, ईश्वरेच्छा की सिद्धि हो तो वहाँ माँ महालक्ष्मी रूप में विराजमान होती हैं । उनका रूप -दर्शन आनन्द की मूर्छना है, उनकी गति और हैं । तुम्हें यहाँ लाई थी उन्हीं महालक्ष्मी की मुस्कान और तुम्हारी आत्मा को उन्होंने ही अपने माधुर्य और कोमलता से चिर –बन्दिनी बना लिया । उन्हीं के दुर्निवार आर्कषण के कारण मानव उनका चिर –तृषित प्रेमी बना रहता है । वे हैं शाश्वत सौंदर्य –देवता । वे प्रभु की माधुरी हैं । न जाने किस क्षण उनके हास्य के ज्योति –स्फुलिंग विकीर्ण होकर अगणित नक्षत्र बन गये ।

वे हैं महाकाली –प्रभु की ज्योतिर्मय शाक्ति , जो असुरों के माया –जाल पल भर में भस्म कर सकती हैं । उन्नति के असम्भव सोपान सम्भव कर सकती हैं । विजयी साधकों की आराध्या वे ही हैं, जो मानव में उत्साह , दुर्दम्य साहस , अगाध निष्ठा और असम्भव की आकांक्षा भर देती हैं । प्रलय और युद्ध उन्हीं के अट्टहास हैं। उनके ज्वलन्त कटाक्ष के स्फुलिंग हमारे हृदय के अशुचि, अपावन को भस्मीभूत कर देते हैं । निज बलि देने की , आहुति का हविष्य बनने की प्रेरणा मानव उन्हीं से पाता है ।अत्तुंग शिखरों पर आरोहण करने की, संकट का आलिंगन करने की, युद्ध में वक्ष कर मर्मान्तक प्रहार सह कर निष्प्राण होने के बाद भी लड़ने की अद्भुत शक्ति मानव को वे ही देती हैं । अत्यन्त प्रबल है उनका सन्तति –प्रेम । अपने शिशु को गलत राह पर भटकते हुए वे देख ही नहीं सकतीं और यदि कठिन आघात द्वारो भक्त को सत्य –पथ पर लाना पड़े तो वे यही करती हैं । वे हैं समस्त अग्नियों का उद्गम , समस्त शक्तियों की क्रोड़ । केवल आत्मजयी ही उनके उज्ज्वल मुख पर दृष्टिपात कर सकते हैं । वे हैं प्रभु की ज्योतिर्मय करवाल और यज्ञ –वन्हि । युगों से सबल उन्हीं का आवाह्न करते हैं, ‘बल दो , माँ , आत्माशुद्धि का अग्नि –दान दो , माँ । वे परम विशुद्धा , स्वर्णिम तनु , मधुर माँ अपनी उत्कटता से भक्तों को उग्र , प्रचण्ड और पराक्रमी बनाती हैं । उनके चरण –स्पर्श से मानव में शौर्य , वीर्य , पुरुषत्व , शक्ति उत्साह और ओज का संचार हुआ है । विश्व में भागवत उद्देश्य की सिद्धि में आलस्य या देर उन महनीय को असहनीय है । वे अपने एक भ्रू – निक्षेप से साधक की तन्द्र और अप्रवृत्ति को छिन्न –भिन्न कर उसमें एक नवोत्साह और नवप्राण का संचार करती हैं । वे ही हैं नवोन्मेषिणी , नवशाक्तिदायिनी परम आराध्या । उनकी कृपा से असम्भव संभव हो जाता है और सम्भव में दिव्यताएँ भर जाती हैं । यदि मानव देवत्व धारण कर सकेगा , दिव्य बन सकेगा तो उन्हीं की वरद मुद्रा के कारण । वे करुणामयी हैं इसी कारण कठोर हैं । मनुष्य को वे ही प्रेरित करती हैं कि

अपने छलावे और मुखौटे उतार कर उपनी प्रकृति की दुर्बलताएँ पहचानने और उन पर घुटने टेक कर खड़ा हो। उनकी एक झलक विशुद्धि का महामन्त्र है, उन्नयन का उद्गम है । उनका शत मार्तण्डालोक सम ज्योतिर्मय एक दृष्टिपात अन्त : करण अपूर्वता की छटा बिखरा देता है । कठिन है उनकी कृपा दुर्बलों के लिये, किन्तु सबल उनके अग्नि –परीक्षक चरणों का आश्रय नही छोड़ते । उनकी कृपा से युग –युग का कार्य , जन्म –जन्म की यात्रा , एक पल में ही पूर्ण हो सकती है । जय हो उन जयति जगद् –जननी की ।

माँ हैं गम्भीर युग –स्रष्टी , कल्प –रचयित्री , ब्रह्माण्डों की साम्राज्ञी – महेश्वरी । उनकी एक नख की क्रान्ति से कोटिश : देवों की शक्तियाँ उद्भूत हुई हैं । वे समभावधारी देवासुर , दानव , सभी की रक्षिक हैं । प्रभु की शक्ति और चेतना हैं । मानव के लिये उनका दर्शन बहुत कठिन है । देव कोटि होकर ही उनका सामीप्य प्राप्त किया जी सकता है । उनका स्पर्श अत्यंत गम्भीर और महान है । वे प्रकृति के समस्त व्यापारों की संचालिका हैं । वे प्रभु की इच्छा को लोक – लोकान्तरों में कार्यान्वित करती हैं । वे हैं मध्यस्थ प्रभु के संकल्प और उसके रूपायन में ।

माँ है महासरस्वती –कौशल और कला की अधिष्ठात्री । मानव में पूर्णता की अभीप्सा उन्हीं की कृपा का फल हैं । हर पुष्प , पत्र , रेत –कण और सीप के आकार का सैंदर्य और पूर्णताओं उन्ही का प्रसाद है । वे शुभ्रवर्णा जीवन को अभिनव पूर्णताओं से समृद्ध कर देती। हैं कठिन परीक्षक । वे ही प्रेरित करती हैं कार्य को सर्वांग सम्पूर्णता की और।

माँ का एक अन्य चरम रूप हा – आल्हादिनी । दूप बहुत दूर है उनका यह लोक, देवताओं को भी दुर्लभ और अप्राप्य ।अपने रूप में वे उमड़ती हैं आनन्द के स्वर्ण सिन्धुओं के समान इस पृथ्वी का रूपान्तरण करने को , इस अपनी हीरक उल्लास छटा से आच्छादित करने को, अपनी रुपहली कान्तिमयी मुस्कान की मोहिनी उसके अणु –परमाणुओं में परिव्याप्त करने को । शिशु के समान समस्त विश्व उनको पुकार रहा है , “आनन्दमयि ! अपने माधुर्य के सृजन की समस्त व्यथी समाप्त कर दो । उश दृश्य जगत में अपनी अदृश्य आनन्द –धारा प्रवाहित कर दो । झूम उठे व्यष्टि और समष्टि तुम्हारे हर्ष के स्वर्ण मयूरों के दिव्य नृत्य से सर्वत्र प्रत्यक्ष हो जाये वह कल्पनातीत और भावतीत आनन्द । युग –युग की दुख –निशा का अन्त कर तुम्हारी मधु मुस्कान –उषा हर नव प्रभात ले आये हर शूल फूल बन जाए, हर पाषाण कोमल हरित दूर्वा । उस आनन्द के घात –संघात से ऐसी नूतन विस्मयकारी सृष्टी को जिसके सम्मुख देवलोक के वैभव फीके प्रतीत हो, बैकुण्ठ पृथ्वी पर अवतीर्ण हो जाए । चिर वृन्दावन की सी तुम्हारी वेणु आठों यामअनवरत बजती रहे । आल्हादिनि ! तुम्हारा हमे जो कल्पनातीत स्वरूप हैं उसकी हम अभीप्सा भी तो नही कर सकते क्योंकि विश्व उसकी एक अस्पष्ट –सी झलक मात्र ही पा सका है। वही एक झलक हमें चिर तृप्ति देकर भविष्य के लिये चिर चिर तृषित भी बना जाती है । जीवन की सर्वोच्च उपलब्धियाँ , माधुर्य , उदात्तताएँ और अभीप्साएँ उस उत्तुंगता के सामने फिकी पड़ जाती है, कहीं दिगन्त में गूँजती उस हँसी के सामने विश्व के सम्मोहन ढीली रज्जु सम भूमि पर ढुलक जाते हैं । हम जानते नहीं कि यह क्या है फिर भी उसके अज्ञात दुर्निवार आकर्षण से उद्भ्रान्त रहते हैं । कोई पूर्णता हमें पूर्ण नहीं कर पाती , कोई उपलब्धि सन्तुष्ट नहीं कर पाती । उसके बिना सृष्टि के कल्प एक निरर्थक आवृत्ति हैं ।

ध्वनि के महान संधात द्वारा अणु –परमाणुओं ने संघटित होकर इस विचित्र अनेक आनन्द –अलवक्त से इसे चिन्हित करते हुये यहाँ संचरण करें । मात्र : ! तुम हो सम्पूर्णता, तुम हो परिपूर्णता । आनन्दिते ! आल्हाद –रंजित ! हम मानवों के आचार –विचार , भाव –विभाव को अपने पवित्र आनन्द –तत्व से ओत –प्रोत कर दो । अशुचिता और अमंगल को पृथ्वी के लिये अपरिचित बना दो । भय , दुख ओर मृत्यु का अस्तित्व ही समाप्त कर दो । माता ! अपना वह कोटि –कोटि आनन्द –सूर्यों का सा रूप जन –जन , कण –कण में प्रकाशित कर दो । स्वयं देवलोक की प्रभा तुम्हारी इस वसुन्धरा की उस दिव्य कान्ति के सामने फीकी पड़ जाए। माता ! आओ, अपनी दिव्य छटा उद्घाटित कर दो । "

मत भूलो, यह सृष्टि माँ ने निज तत्व से निर्मित की है । लघु –महान , सामान्य –असामान्य , शुचि –अशुचि सभी में वे प्रचछन्न रूप से परिव्याप्त है । इसी कारण वे मानव को प्राप्य हैं , उसके समीप हैं, उसकी गुरू और उसकी जीवन – नौको की खिवैय है। उसके प्राणों की चेतना , मन का प्रकाश और हृदय की गति हैं । आओ खो जाएँ हम उनमें । उनसे एकाकार होकर उनकी मादक छवि की ही एक झलक बन जाएँ । उनकी दिव्य अग्नि की एक शिखा बनकर ज्योतिर्मय हो जाएँ । प्रेम से एक बार पुकारें :

"माँ, आओ ! हमें अपनी बाँहों में उठा लो, अपना योग्य शिशु, अपना प्रतिरुप बना दो । हममे दिव्यत्व भर दो, देवत्व उतार दो , समता स्थापित कर दो । हमें शुचिता से पुनीत कर दो । अपने कार्य के लिये अपने बल –वैभव से ओजस्वी और वैभवशाली बना दो । जो तुम चाहो, जब तुम चाहों , हमे वैसे ही बन जाएँ । तुम्हारे कर –कमलों में नमनीय , पवित्र , कोमल और सुगन्धित मिट्टी के समान हों । जैसी भी तुम्हारी इच्छा हो हमें उसके अनुरूप गढों । माँ अपनी इच्छा की अनुभूति करा दो , प्रतीति करा दो , जिससे हम जीवन की हर घटना और दुख-सुख में छिपे तुम्हारे उद्देश्यों को पहचान कर उन्हें बिना हिचक के स्वीकार कर सकें । हमें शक्ति हो जिससे हम तुम्हारी इच्छा का पालन कर सकें , तुम्हारे योग्य बन सकें और तुम्हारी दिव्यत्व में निवास कर सकें ।

"माँ अपना बना लो हमें।"
श्रीमाता शरणं मम ।

सामूहिक प्रार्थना का महत्व

-श्रीमाँ

सामूहिक प्रार्थना विभिन्न प्रकार की होती है , ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार समूह भिन्न –भिन्न प्रकार के होते हैं । एक नामरहित समूह होता है जो आकस्मिक परिस्थितिवश एकत्र हो जाता है, - इसमें कोई आन्तरिक ऐक्य नहीं होता , -जो किन्ही घजनाओ के द्वारा ही प्रेरित होता है, उदाहरणार्थ जब कोई ऐसा राजा या विशिष्ट व्यक्ति जो जनसमुदाय का ध्यान अपनी ओर खींच सकता है अपने आपको एक अस्वस्थ और संकट और संकटपूर्ण स्थिति में पाता है या किसी आक्सिमक घटना का शिकार होता है और लोग खबरें सुनने या अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये उसके आस –पास इक्ठ्ठे हो जाते हैं । ऐसे समय लोग घटनावश ही एकत्र होते हैं , उन्हें परस्पर बाँधने वाला वहाँ कोई भी सूत्र विद्यमान नहीं होता , सिबाय इसके कि उनमें एक ही भावपूर्ण प्रेरणा या रुचि उपस्थित रहती है ।

ऐसे उदाहरण भी हैं जबकि जनसमूह सहज भाव में किसी ऐसे व्यक्ति की रोगमुक्ति के लिए प्रार्थना करता है जिसमें वह विशेष रूचि रखता है । साथ ही यह भी स्वाभाविक है कि वहीं जनसमूह एक विरोधी उद्देश्य से भी एकत्र हो सकते हैं । उनकी पुकार भी एक प्रकार की प्रार्थना हो सकता है , यद्यपि यह प्रार्थना विरोधी और विनाशकारी शक्तियों के प्रति की जाती है ।

ये सब क्रियाएं सहज, अव्यवस्थित और अप्रत्याशित प्रकार की ही होती हैं । कुछ ऐसे जनसमुह भो होते हैं , जो एक आदर्श या एक शिक्षा के लिए या फिर एक ऐसे काम के लिये एकत्र होते हैं जिसे वे करना चाहते हैं । इन्हें संगठित करने वाला एक सूत्र वहाँ विद्यमान होता हैं, यह सूत्र उस एक ही संकल्प और एक ही विश्वास का होता है ये लोग एक व्यवस्थित ढंग से प्रार्थना या ध्यान –चितनं करने के लिए इकट्ठे हो सकते हैं और यदि उनका लक्ष्य ऊँचा हो, संगठन ठीक ढंग का हो एवं आदर्श शक्तिशाली हो तो ये जनसमुदाय अपनी प्रार्थना या अपने ध्यान के द्वारा जगत की घटनाओं पर तथा स्वयं अपनी आन्तरिक उन्नति और साथ ही सामहूक उन्नति पर तथा स्वयं ही अधिक ऊँचे होते है , इनमें वह अंध शक्ति नहीं होती जो साधारण जनसमूहों में होती है , इनमे वह अंध शक्ति नहीं होती जो साधारण जनसमूहों में होती है , न इनका सामूहिक कर्म ही उनके जैसा होता है । ये उनकी उग्रता और प्रचंडता के स्थान पर एक चेतन और स्वेच्छा –प्रेरित संगठन की शक्ति ले आते है ।

सब समयों में, पृथ्वी पर ऐसे समूह विद्यमान रहे हैं जिन्होंने अपने आपको इस प्रकार संगठित किया था कइयों ने तो संसार में ऐसा जीवन बताया है, ऐसे काम किये हैं जो इतिहास की चीज बन गये हैं । किन्तु सामान्यता इन्हें जितनी सफलता विशिष्ट व्यक्तियों के साथ प्राप्त हुई उससे अधिक जनसमुदाय के साथ नहीं प्राप्त हुई । इन्हे सदा ही सन्देहों का भोजन होना पड़ा , आक्रमणों और उत्पीड़नो का शिकार बनना पड़ा , इनका प्राय: क्रूर और अत्यन्त अस्पष्ट एवं अज्ञानपूर्ण ढंग से विनाश कर दिया गया ।

इनमें से कुछ समूह अर्द्ध – धार्मिक तथा अर्द्ध –साहसी थे तथा एक विश्वास के बल्कि एक मत के चारों ओर , निश्चित

लक्ष्य को रखते हुए एकत्रित हुए थे ,संसार में इनकी एक बड़ी मनोरंजन कहानी है । निश्चय ही इन्होंने अपने वैयक्तिक प्रयत्न के द्वारो सामूहिक प्रगति में बहुत योगदान किया है ।

एक आदर्श संगठन भी होता है जो यदि अन्त तक सर्वगीण बना रहे तो वह अत्यधिक शक्तिशाली कार्य कर सकता है, पर केवल तभी यदि अन्त तक सर्वांगीण बना रहे तो वह अत्यधिक शक्तिशाली कार्य कर सकता है, पर केवल तभी यदि उसका निर्माण करने वाले अंगों का एक ही लक्ष्य हो, एक ही संकल्प हो , साथ ही वह आन्तरिक रूप में इतना विकसित हो कि लक्ष्य , अभीप्सा और धर्म की आन्तरिक एकता को एक अत्यधिक ठोस स्वरूप प्रदान कर सके ।

सभी समयों में, दीक्षा के केन्द्रों ने थोड़ी बहुत सफलता के साथ ऐसा करने का प्रयत्न किया है ओर समस्त गुह्य परम्पराओं में इसे सदा ही कर्म का अत्यधिक शक्तिशाली साधन माना गया है ।
यदि सामूहिक एकता वैसी ही ठोस ही सकती जैसी कि वैयक्तिक एकता होती है व्यक्ति के बल और कर्म को कहीं अधिक बढ़ा देती ।

पर साधारणता तो ऐसा ही होता है कि यदि बहुत से व्यक्तियों को एकत्र किया जाये तो समूह का संयुक्त महत्व वैयक्तिक महत्व से, एक – एक व्यक्ति के अलग –अलग महत्व से, काफी नीचा रहता है ।इसके विपरीत यदि , समुदाय पर्याप्त रूप में चेतन और संगठित हो तो प्रत्येक व्यक्ति को शक्ति और कर्म करने की सामर्थ्य अत्यधिक बढ़ जाती है ।

सुवर्ण –सुयोग

-बाबा रामकृष्ण दास

संसार में जब कोई संकटकाल आता है , अन्याय और अत्याचार बढ़ जाते हैं तब भगवान स्वयं अवतार धारण कर यहाँ आते हैं अथवा अपनी किसी विभूति को भेजते हैं जो लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा देते हैं और थोड़े प्रयास से ही वे मनुष्य को अपनी शक्ति के द्वारा बहुत दूर मार्ग में बढ़ा देते है । अन्य समय में जो साधना दीर्घकाल में सम्भव होती ,इस समय वही थोड़े समय में पूरी हो जाती है। जिस समय श्रीराम ,श्रीकृष्ण,बुद्ध ,शंकर , रामानुज , चैतन्य महाप्रभु आदि आये थे , उस समय वही सुयोग था । उस समय हजार –हजार नर –नारियों का थोड़े प्रयत्न से ही उद्धार हो गया

था । उनकी शिक्षा वर्तमान में भी है । परन्तु अब क्योंकि वे शरीर में नहीं हैं और उनका समय बीत गया है इसलिये उन शिक्षाओं से व्यक्ति तब जिस तरह लाभान्वित होता था, वैसा अब नहीं हो सकता ।

आज घोर संक्रान्ति का काल आया हुआ है । मनुष्य प्राणाघातक संकट में फँसा हुआ है । व्यक्ति , समाज ,अथवा राजनीति में घोर मिथ्यात्व का राज हम देख रहे हैं । हमारी पुरानी नैतिकता टूट गयी है । जिस नैतिक आधार पर हमारा व्यक्तिगत अथवा लोक –जीवन अब तक चलता आया है उससे सर्वथा विच्छिन्न हो जाने कारण आज एक अत्यन्त ही विपज्जनक दुर्व्यवस्था संसार में फैला चुकी है । इसी संकट से त्राण के लिये श्रीमाँ –श्रीअरविन्द हमें वर्तमान चेतना से उठाकर नूतन चेतना में ले जाना चाहते हैं, क्योंकि हम पुराने आदर्शों के द्वारा जीवन पर छाये इस महान संकट को टाल नहीं सकते । पुराने आदर्श तो विफल हो चुके हैं । रूपान्तरण के द्वारा ही हमें इस संकट के उस पार जा सकते हैं , बल्कि यह कहना चाहियें कि नवीन सिद्धि को प्राप्त कर जीवन को ऊँचा और समृद्ध बना सकते हैं । इसी सिद्धि के लियेश्रीमाँ-श्रीअरविन्द आये है । इसी की सहायता से नयी सृष्टि का काम पूरा होगा ।

श्रीमाँ –श्रीअरविन्द जिस नये स्तर तक मानव जाति को उठा . ले जाना चाहते है , उसके लिये व्यक्ति को कुछ काम करना चाहियें , उसका भी अपना दायित्व है । नयी चेतना का जो सूर्य – अतिमानसी सूर्य आज उदित हो रहा है, उसके प्रति अपने आपको खोल रखना ही यह काम है । द्वार यदि बन्द रहा तो सूर्योदय के बाद भी प्रकाश अँधेरा कोठरी में नहीं पहुँच सकता अथवा पहुँचेगा भी तो बहुत देर बाद ।यद्यपि अतिमानसी शक्ति एक अमोध शक्ति है और वह व्यर्थ नहीं जायेगी फिर भी यदि व्यक्ति अनिच्छुक रहा और दरवाजे को उसने बंद रखा तो जो काम सरलता से शीघ्र सम्पादित हो जाता वही देर और भीषण तोड़ –फोड़ तथा दुर्घटनाओं के बाद सम्पन्न होगा । दरवाजा खोल रखने के विविध तरीके ,है;एक तो श्रीमाँ के प्रति श्रद्धा ,विश्वास ,निर्भरता एवं समर्पण और दुसरा है ध्यान , अभीप्सा और समर्पण ।दोनों परस्पर सम्बन्धित हैं । एक के होने से ही दूसरा भी सम्पन्न हो जाता है । परन्तु व्यक्ति के स्वभावनुसार किसी का प्रारम्भ पहली गति से और किसी का दूसरी गति से होता है । स्वभाव के अनुरूप ही व्यक्ति विशेष को चाहियें कि वह अपना मार्ग चुन ले और उसी उपाय को अवलम्ब मानकर अपने –आपको खोले ।

यह साधना व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही स्तरों पर चलनी चाहियें , क्योंकि दोनों ही प्रयोजनीय हैं । स्वयं श्रीअरविन्द आश्रम इसका उदाहरण है । आश्रम के समान ही यदि घर –घर में, प्रत्येक ग्राम और शहर में इस भाव को अपना लिया जाये तो संसार से दु:ख –द्वन्द्व मिट जायेगा और भगवान संसार में व्यक्त हो जायेगे । हाथ पर हाथ रख बैठे रहने से काम नहीं चलेगा । तत्परतापूर्वक साधना शुरू कर देने से ही प्रत्येक घर , प्रत्येक गाँव , साधनालय बन जायेगा और संसार आनन्द से भर जायेगा ।

(2)

अपने घर में श्रीमाँ –श्रीअरविन्द का फोटो रखना चाहिये । प्रतिदिन साफ रूमाल या तौलिया से फोटो साफ करना

चहिय, फिर सम्भव हो ते धूप –दीप अर्पण करना चाहियें और कुछ फूल भी देना चाहिये । सुबह –शाम उनको प्रणाम करना चाहिये और घर का स्वामी उन्हें ही समझना चाहिये घर परिवार ,सम्पत्ति ,गाय,बैल सभी उनके है। हम उनके सेवक हैं । हम जो काम करते हैं ,उस पर उन्होंने ही हमें नियुक्त किया है । इस प्रकार सारा कर्म उन्हीं की सेवा है ।रसाई बनाना , बर्तन माँजना , कपड़े धोना ,घर साफ-सुथरा करना –सभी काम उनके है । कारण यह है कि सब तो उन्हीं का है , सबके वे ही मालिक हैं । लड़को को खाना –पीना देना, उन्हें नहलाना –धुलाना ,गाय –बैल की सेवा , जमीन में फूल –पत्ती लगाना ,कृषि ,वाणिज्य , देश –सेवा इत्यादि सभी काम उनके हैं । सेवा-भाव से हमें सारे कर्म करने चाहिये । काम में काई भेद नहीं रहता । हम उसे यदि अपने लिए करते है तो नौकर –चाकर वेतन के लिये करते है। लेकिन हम यदि अपने –आपको सेवा-भाव से काम के अर्पण कर देते हैं तो जो काम हम अपने लिये , अपने बाल बच्चों के लिये करते हैं वही काम भगवान के लिये हो जाते हैं।

क्योंकि व्यक्ति जिस सम्पत्ति को ,घर –बार अथवा परिवार को अपना समझता है , वस्तुत: वह तो उसका है नहीं । सभी भगवान का है । ये सब तो उन्हीं के थे, वर्तमान में हैं और भविष्य में भी रहेंगे । मनुष्य केवल मोहवश सबको अपना कहता है । विवाह हो जाने पर कन्या पति के घर चली जाती है । विवाह से पहले वह पिता के घर को अपना घर समझती थी ,वहाँ की सभी चीजों को वह अपना मानती थी। परन्तु विवाह के बाद उन्हीं चीजो को वह अलग मानने लग जाती है ओर पति घर –परिवार को ,जिस सम्पत्ति अथवा अधिकार को अपना मानाता है , उन्हीं से वह मृत्यु के बाद अलग हो जाता है । मोह के वश जिन्हें वह अपना समझता है और जिनसे चिपका रहता हैं, मृत्यु उसे उन्हीं चीजों से अलग कर देती है । वस्तुत: ये चीजें, तो भगवान की थी और उन्हीं की रहेंगी । परन्तु मोह तथा अज्ञान के कारण आदमी उनके लिये खूब कष्ट उठाता है और उनके बन्धन में पड़ा छटपटाता है । अज्ञानवश इन्हें अपना समझता हुआ काम करता रहता है और कर्म –बन्धन में पड़ा रहता है । परन्तु यदि वह इन्हें भगवान का समझ ले तो यही कर्म उसके लिए मुक्ति का दरवाजा खोल देते है ।वह इनमें आसक्त नही रहता और इन में आनन्द का भोग है क्योंकि वह जानता कि इन सबके द्वारा वह भगवान की सेवा कर रहा है ।सम्पत्ति और अधिकार का मोह फिर उसे नहीं सताता । वस्तुत:साधना का यह अत्यन्त ही ऊँचा स्वरूप और भाव है । परन्तु है यह सबसे सरल, सबके लिए सुलभ : क्योंकि इसके लिए किसी विशेष प्रकार की तैयारी नहीं करनी पड़ती । न बहुत ज्ञान –ध्यान की जरूरत है, न विद्या की और न किसी चीज की । कोई भी व्यक्ति किसी भी अवस्था में इसे प्रारम्भ कर सकता है । इस प्रकार का भाव यदि रखा जाय तो सचमुच श्रीमाँ हमारे गृह परिवार को स्वीकार कर लेती हैं और हमारा भार हल्का कर देती हैं । फिर जटिल से जटिल समस्या का समाधान भी उनकी सहायता सें संभव हो जाता है । कठिन अवस्थाओं में, शोक –कष्ट में हम उनकी सुखद छाया अनुभव करते और उनकी सहायता से हम सभी मुश्किलों को आसानी से पार कर जाते हैं। जैसे –जैसे हमारा चारों और बढ़ती जाती है और वे अधिकाधिक हमारा भार उठाने लग जाती हैं ।

किसी भी समय ,कोई भी काम करते हुए "श्रीमाँ शरणं मम", श्रीअरविन्द :शरणं मम" अथवा केवल माँ या श्रीमाँ का जाप करना चाहिये । सोते समय और यह प्रार्थना करते हुए सोना चाहियें कि हें माँ जो कुछ भी हैं ,हमारा जो

कुछ भी हैं , सब आपके चरणों मे समर्पित है और हम आपके सेवक है । यह भावना हमारी बराबर बढ़ती रहे और आपेक प्रति हमारी श्रद्धा –भक्ति सदा बढ़ती जाये नींद न आने तक श्रीमाँ का नाम स्मरण करते रहना चाहिये । जागते हुए भी ऐसी ही प्रार्थना के साथ शय्या त्याग करना चाहिये औऱ दिन का काम शुरू करना चाहियें । भोजन भी श्रीमाँ का नाम स्मरण करते रहना चाहिये । स्नान के बाद 5-10 मिनट फोटो के साथ बैठकर मन को एकाग्र करना चाहिये। फोटो के ऊपर मन एकाग्र हो जाने पर आँख बन्द कर हृदय के भीतर उसी मूर्ति को देखने का प्रयत्न करना चाहियें । जो ध्यान नहीं कर सकते ,वे श्रीमाँ की सेवा के रूप में गृहकार्य चलाते हुए मार्ग में बढ़ सकते ,है । जिनके लियें जो सरल हो उसी से प्रारंभ करना चाहियें । किसी भी भावना से शुरू किया जाय वही प्रारम्भिक भाव फिर अपना मार्ग तैयार कर लेता है । जिस प्रकार बहुत बड़े बाँध में भी यदि कोई छोटे छेद हो जाय तो वही छोटा छेद बड़ा हो जाता है और अन्त में सारा बाँध कमजोर पड़ जाता और अन्त टूट जाता है , इसी प्रकार आध्यात्मिक साधन्ा की अतिदुर्बल शुरूआता भी अन्त में सारे जीवन पर छाने लगती है । भगवती शक्ति में प्रवेश के लिये छोटी राह भी यदि मिल जाय तो वह काल –कालान्तर में बड़ी हो जाती है , उसी अनुपात में कार्य -शक्ति और कर्म –कौशल का विकास होने लगता है । आध्यात्मिक उन्नति होने लगती है । मातृ –शक्ति तब सभी कार्यो में सहायता और प्रेरणा देने लगती है ।

इस आचरण से सन्तान भी प्रभावित होंगी क्योंकि वे इसे देखेंगी , सीखेंगी और करेगी । उपर्युक्त साधन्ा या भाव जिसको जैसे सुगन लगे वैसे ही प्रारम्भ करना चाहिये ।जिसके लिये जो सरल होगा वही होगी उस व्यक्ति की सर्वश्रेष्ठा साधना ।प्रारम्भ की यही साधारण साधना विशाल बन जायेंगी और भगवान के पास पहुँचा देगी ‘स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतोभ्यात्’ --- थोड़ा भी इसका आचरण महान भय से त्राण दे दैत है । इस प्रकार के आचरण से घर का वातावरण तो शुद्ध होगा ही ,साथ में ग्राम का वातावरण भी प्रभावित होगा और व्यक्ति को इसमे बहुत सहायता मिलेगी । इसीलिये प्रत्येंक स्कूल कालेज मे छात्र समाज होना उचित है ।

संसार मं अन्न वस्त्र ,औषध-दान ,रास्ता –घाट का निर्माण आदि जितने श्रैष्ठा है अध्यातम साधना का प्रासार ।अन्न –वस्त्र , औषधि आदि से मनुष्य को स्थायी सुख नही मिलता । किन्तु आध्यात्मिक सत्य की साधना से संसार के सभी सुखों से उत्तम जिस सुख की प्राप्ति होती है वह नष्ट नहीं होता , बल्कि बढ़ता जात है । यह जन्म – मरण के दारूण दु:ख से भी मुक्त कर देता है । इसी कारण आध्यात्मिक सेवा सर्वोत्कृष्ट है।

यह तो स्पष्ट ही है । कि सम्पत्ति , परिवार सब इसी जगह छुट जायेंगी । उपार्जित धन का एक पैसा भी साथ नही जाता । साथ में तो केवल अच्छा –बुरा कर्मफल ही जाता है । अत: आज से ही जो शुभ कर्मफल साथ में जायेंगे, सावधान होकर उन्हीं की संचित करना चाहिये । मनुष्य की सबसे बड़ी भूल यही है कि जो साथ नही जायेगा उसी के लिए वह प्राणपण से चेष्टा करता है और जो सहायक है उसे वह भूल जाता है । यथार्थ में तों भगवान ही चिर साथी हैं । भगवान को प्राप्त करने के लिए ही मनुष्य पृथ्वी पर आया है ।
मौन में है सब समहित

मोन में निहित है सब ,कहते ही करता है निरीक्षण ;
मौन के ग्रन्थ में बह्माण्डशास्त्री ने अपने ब्रह्माण्डीय पृष्ठो का किया है अंकन ;
मौन में निहित है सब ,कहते है ज्ञानीजन ।

तब शब्द का मूल्य क्या , ओ वाचक ?
तब विचार का अर्थ क्या , ओ चिन्तक ?
विचार है आत्मा की सुरा और शब्द है चषक ;
ज्ञानी की आत्मा मद्यप, जीवन है भोज –फलक ।

सुरा का अर्थ क्या , ओ मानव नश्वर ?
मैं हो जाता मदिरामत्त जब मैं बैठता प्रज्ञा के प्रवेशद्वार,
प्रकाश की करता प्रतीक्षा विचार और अक्षर शब्द के पार ।
देर तक मैं व्यर्थ हो बैठता प्रज्ञा के प्रवेशद्वार ।

तुम कैसे जानोगे शब्द का आगमन , ओ अन्वेषक ?
तुम कैसे जानोगे प्रकाश की पौ का फुटना , ओ साक्षी दर्शक ?
मैं सुनूँगा ईश्वर की आवाज अपने भीतर और बनूँगा अधिक विज्ञ, अधिक विन;
मैं बनूँगा वृक्ष जो प्रकाश को भोजनवत् करता ग्रहण , मैं पियूँगा इसकी मधुरिमा का अमृत

-श्रीअरविन्द

चाचा जी के पावन प्रसंग

- नलिन धलिकिया

चाचाजी ने मेरा कान अभी भी नहीं छोड़ा है । नरेन्द्र से पूछा कि इतनी दूर उड़ीसा से दिल्ली कैसे पहुँच विशाल आश्रम में चाचाजी के 'परिवार' में प्रवेश पा गये ?

नरेंद्र ने कहानी बतायी :
"उड़ीसा में इण्टर करने के बाद – पानी से हालत अच्छी न थी । फरीदाबाद में मेरे एक चाचाजी थे । उनके पास पहुँच गया और वहाँ से दिल्ली घूमने आया।"

"उड़ीसा में श्रीअरविन्द आश्रम के लोगों से परिचय था ही । दिल्ली में भी आश्रम है पता था । सो देखने चला गया" । आश्रम में घुसा कि सामने एक रोबीले , शानदार व्यक्ति दिख गये । वे काम की देखभाल कर रहे थे । मैं भी उत्सुकतावश वहाँ पहुँच गया"।

परन्तु जैसे ही मैं वहाँ पहुँचा , उन सज्जन ने लपक कर मेरा कान पकड़ लिया । मेरी तो डर के मारे जान सूख गयी । सोचा यहाँ आकर मैने गलती की है।"
"वे सज्जन वर्कस को सूचनाएँ दे रहे थे पर मेरा काम अब भी उनकी पकड़ में था । अंत में मुझे गुस्सा आ गया । मैंने जोर से पूछा कि आप मेरा कान क्यों पकड़े है ?"
परन्तु उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया । थोड़ी देर बाद वे चल पड़े । पर मेरा कान अब भी उनके हाथ में था।"

मैंने चलते –चलते फिर गुस्सा से पूछा –"आप मेरा कान क्यों नहीं छोड़ रहे हैं ?"
परन्तु उन्होंने कान पकड़े –पकड़े ही प्रश्नों की बौछार लगा दी । नाम –धाम , मैं कहाँ ठहरा हूँ – क्या करता हूँ –पूरी जानकारी उन्होंने हासित कर ली ।"

"अंत में कमरे में पहुँचे । पर कान अभी भी छूटा नहीं था ।" "इस बार तो मैने लगभग चिल्ताकर ही पूछा, " आप मेरा कान क्यों नहीं छोड़ते?"

तब उन्होंने जवाब दिया, " अरे बेवकूफ , उल्लू, इतना भी नहीं समझता ? अगर भगवान ने न भेजा होता तो तू यहाँ आता ही क्यों ?भगवान ने ही तुझे मुझसे मिलाया है । अब तू इधर –इधर का काम करेगा ? भगवान का काम नहीं करेगा ? अभी से तू यही काम में लग जा । अब तू कहीं नही जायेगा ।

तब से तीस वर्ष हो गये । लगता है जैसे अभी भी चाचाजी ने मेरा कान नहीं छोड़ा है ।
यदि नृत्य जीवन में उतर जाये तो कहीं झगड़ा ही न रहे—

बाहर से देखने से नहीं लगता था कि चाचाजी का कला से भी कोई । ईट, चूना , गारा , पत्थर लोहा – इन पंचतत्त्वों के मेंल से उनकी दिनचर्या रूपायित होती थी । धमाके से चलते निर्माण और ध्वंस – कार्य का शोर था उनका संगीत और बारा – पत्थर से ऊपर आश्रम तक लोहे की छड़ों के भारी –भरकम बंडलों को ढो कर लाते श्रमिकों की अंग – भंगिमा थी उनका नृत्य ।

चाचाजी के श्रमिक –पुत्र अभी भी यह किस्सा याद करते है , “छत डाली जा रही थी । युद्ध –स्तर पर कार्य चल रहा था । एक तरफ सीमेंट –रोड़ी का मिश्रण तैयार हो रहा था । एक दल तसते भर –भर मसाला ऊपर पहुँच रहा था । खाली तसले नीचे फेंके जा रहे थे । मिस्त्री चिल्ला कर आदेश दे रहा थे । श्रमिकों का शोर अलग से । पूरा महौल ऐसा कि कुंभकर्ण भी सो न सके । परंतु देखा कि चाचाजी परम शान्ति से अपनी कुर्सी पर निद्रामग्न हैं , पूर्णतया समाध्स्थि । जैसे लोरी सुनते – सुनते सो गये हों !तब श्रमिकों को शैतानी सूझी । कुछ पलों के लिये उन्होंने काम रोक दिया । अचानक एक दम सन्नाटा छा गया । चाचाजी एकाएक चौंक उठे : “अरे उल्लू के पट्ठो !काम क्यों रोक दिया ?और फिर बज उठी श्रम –सिंफनी ।

ऐसे कठोर आवरण के तले , कला के सुकुमार स्पर्श से स्पंदित होती संवेदनशीलता के पनपने की कल्पना भी नहीं की जा सकती । परंतु किसी एक परिभाषा में बँध सके इतना उधला व्यक्तित्व नहीं था चाचाजी का । कोई भी एक आवरण –कठोर या मृदु –उनको बाँध कर नहीं रख सकता था । लोहे के छड़ की झन्नाहट और तानपूरे के तारों के अनुसणन के बीच चलती थी जुगलबंदी चाचाजी की महाफिल में । कहीं कोई विरोधाभाल नहीं था । उस दिन वन निवास नैनीताल के ध्यान कक्ष में अचानक जम गयी महाफिल । नैनीताल की उदीयमान नृत्य – साधिका पूनम जोशी ऊपर आश्रम में आयी थीं । बनारस से कौशिक भी आया था । उसको नृत्य के साथ तबला – संगत करने का अवसर मिले इस उद्देश्य से करुणा दीदी ने रची थी यह संगीत सभा ।

चाचाजी उस समय काफी अस्वस्थ थे । वर्षा और ठंड से उनका पूरा श्वाँस –संस्थान ग्रस्त था । परन्तु फिर भी वे हाल में आकर बैठ गये। बहुत देर तक नृत्य का अभ्यास होता रहा । ध्यान –कक्ष में लय –ताल –लास्य था । के माध्यम से साक्षात भगवान् उतर आये थे । सभी ध्यान मग्न थे ।

जब नृत्य समाप्त हुआ तो चाचाजी की ओर ध्यान गया । इतनी देर से बैठे हैं । नैनीताल की ठंड, नमी । थक तो नहीं गये होंगे ? परंतु चाचाजी को बीमारी को भी ओढ़न – उतारने की सिद्धि हासिल थी । उनका रुग्ण शरीर व मन अभी भी नृत्य की थिरकनों से स्पंदित था । पूनम आशार्वाद लेने गयी तो बोले : “मैं देख कर दंग हूँ । तुमने कमाल कर दिया । यही नृत्य जीवन में उतर जाये तो कहीं झगड़ा ही न रहे। ”
बाहर से भीतर की ओर

नैना – शिखर , केमल्स बैक, टिफिन –टॉप पर धीरे –धीरे शाम उतरती है । दूर सामने की चोंटी पर स्थित रडार –केन्द्र पर अभी कुछ क्षण पूर्व धूप थी । अब समस्त रूप -जगत पर एक पर्दा सा पड़ रहा है । लगता है कोई महास्वामी , ध्यान की गहराईयों में उतर पड़ रहा है । यह –वह ,मेरा –तुम्हारा,दूर –पास , ऊँचा –नीचा , काला – सफेद –सारे भेद –विभेद मिटते जा रहे हैं । नीचे घाटी के घर –आँगनों से उठता जीवन –रस थम गया है ।

तभी मेरे पैर चाचाजी के कमरे की ओर मुड़ गये । देखा चाचाजी फ्लंग पर अधलेटे से बैठे थे । उतरती शाम के और निर्लिप्त । आज ध्यान –कक्ष तक जाकर बैठने की शक्ति भी उनके शरीर में नहीं थी । चाचाजी का ध्यान –पूजन अर्थात् कमरतोड़ काम । निर्माण –कार्य । आश्रम – भवनों को, संपर्क में आने वाले लोगों को, और स्वयं को भी निरंतर गढ़ते चले जाना –यह था चाचाजी का योग । इसलिये मैंने दिनभर के कार्यकलापों का ब्यौरा दिया और इसी बीच , बिना किसी भूमिका के, चाचाजी हूँ। ”

मैं अवाक् । आँखों में प्रश्नों की झड़ी भर कर उनकी ओर देखता रहा ।
कहने लगे , “मेरे शरीर में अब कुछ भी बाकी नहीं रहा । चारपाई के नीचे पैर नहीं रख सकता । रोंये –रोये में दर्द है । बोलने में साँस भर आती है । इसका मतलब है कि बाहर रह कर तूफान की रफ्तार से दौड़ने का मेरा वक्त पूरा हुआ । अब तो अन्दर की ओर चलते चले जाना है ”
माध्यान की अतल गहराईयों से उठ रही हैं यह निराशा अथवा थके मन का निश्वास हैं यह – मेरे मन में शंका उठी । पूछ बैठ: “फिर सारे कामों का क्या होगा ? काम भी समेट लिये जायें?”
“बिल्कुल नहीं ! हरगिज नहीं ! अदंर रह कर भी बाहर के काम चल सकते हैं । यही तो देखना है अब ।” चाचाजी के स्वर में किसी विराट चुनौती को स्वीकार करने की दृढ़ता थी ।
आगे यही हुआ ।

अभिलाषा

- कुमारी निवेदिता

जी चाहता है
तुझे पुकारूँ
नयन कहते हैं
पुकारो नहीं देखो
हृदय कहता हैं
पुकारा क्यों ?
पास ही तो है
कविता में उतारो
मस्तिष्क कहता है
सोचूँ
केवल और केवल
तुम्हारे लिये ।
सरगम कहता हैं
गाऊँ केवल तेरे वे गीत
जो तुम्हें
मेरे पास बुलाये ।
हाथ कहता है ,
तुम्हें स्पर्श करूँ
पर डर लगता हैं ,
चलूँ तेरी उन राहों पर।

चैत्य पुरुष , आध्यात्मिक स्तर , अतिमानसिक अवतरण आदि

चैत्य परिवर्तन

वह आन्तरिक परिवर्तन जो हमारी चैतना को सदा प्रकाश की ओर उन्मख रखता है और हमारे अन्दर की शुद्ध वृत्ति को सहज , स्वाभाविक और स्थायी बना देता है , साथ ही अशुद्ध वृत्ति की अस्वीकृत को भी सहज बना देता है वही है तैत्य पुरुष रुपांतर । अभिप्राय यह कि साधारणत; मनुष्या अपने प्राण में है रहता है शरीर उसका यंत्र है ; और बुद्धि -उसकी सलाहकार और मंत्री है (अवश्या ही कुछ ऐसे बुद्धि – प्रधान प्राण भी हैं जो अधिकतर बुद्धि में निवास करते हैं परन्तु वे भी अपने साधारण व्यापारों में प्राण के द्वारा ही प्रेरित और संचालित होते हैं) । आंतरिक रुपांतर का शुभारंभ तब समझना चाहिये जब आत्मा जीवन की गंभीरतर सतहों में उतरने की मांग करे और इस रुपांतर की पूर्णता तब आती है जब चैत्य पुरुष चेतना का अधिनायक अथवा आधार बन जाता है और मन , प्राण और शरीर इसका अनुसरण करते हैं, इसका अनुसरण करते हैं ,इसका आदेशपालन करते है । निश्चय ही , यदि ऐसा एक बार भी पूर्णत: हो जाता हैं, तो संशय , संदेश , निराशा , अवसाद आदि सदा के लिये बिदा हो जाते हैं , हालांकि अभी भी मार्ग की कठिनाइयां बनी रह सकती हैं और रहती ही हैं । यदि यह पूर्णत: न होकर सिद्धांत-रुप में होती हैं तो भी निराशा,अवसाद आदि या तो आते ही नही या यदि आते हैं तो क्षणभंर, भागते हुए बादलों की तरह विलीन हो जाते हैं क्योंकि आधारशिला अत्यंत दृढ़, स्थिर और विश्वस्त होती है। यह आधार कुछ देर के लिये आच्छन्न भले ही हो जाय पर सर्वथा विगलित नहीं हो सकता ।

फिर भी प्राय: संशय , निराशा , विद्रोह और विषाद के बार – बार लगातार आते रहने का कारण यह होता है कि कोइ मानसिक या प्राणिक रचना प्राणिक मन को अपने अधिकार में कर लेती उसे बिलकुल हलके कारणों से या बिना कारण के ही उसी चक्र में दौड़ते रहने को उकसाती रहती है । यह एक ऐसी बीमरी की तरह है जिसे स्वभाववश या विश्वासवश शरीर स्वीकार कर लेता है यद्यपि यह उसके कारण दु:ख ही भोगता है। एक बार शुरु हो जाने पर बीमारी पूरा समय लेती है और ऐसी तब तक चलता है जब तक कि एक घोर प्रभावशाली शाक्ति उसका अंत न कर डाले । यदि एक बार भी शरीर अपनी स्वीकृति न दे तो बीमारी तत्काल और शीघ्र ही चली जाती है । यही था ‘ कुए’ – coue – प्रणाली (स्व-प्रेरण) का रहस्य । इसी प्रकार यदि इच्छामय प्राण अपनी स्वीकृति न दे, स्वभाववश ग्रहण की हुई प्रेरणाओं अभ्यस्त गतियों को अस्वीकार कर फेंकता जाय तो निराशा और अवसाद के बार –बार आगमन को सदा प्रकार के मन के लिए तत्काल रोका जा सकता है । परन्तु यह इस प्रकार के मन के लिये जो बराबर निराशा –अवसाद को स्वीकृति प्रदान करता है रहता है , वह भले ही निष्क्रिय क्यों न हो और इस कुचक से मुक्त हो जाय । यह असानी से केवल तभी हो सकता है यदि हमारी मन बुद्धि उन संकेतो का या उन विचारो और भावों को जो इस कुचक को जन्म देते हैं अस्वीकार कर दे तथा उनमें विश्वास करना सदा के लिए बन्द कर दे

स्वाभाव –परिवर्तन

स्वभाव – प्रविर्तन के लिये पहला पग होगा सचेतन होना और अपने पुराने तथा ऊपरी स्वभाव से अपना सबंध हटा लेना क्योंकि यह राजसिक प्राणिक स्वभाव प्रकृति की तलीय रचना है , यह हमारा से हमारा वास्ताविक व्यक्तित्व , नही है । यह चाहे कितना भी स्थायी क्यों न प्रतीत हो रहा हो यह है एकदम प्राणिक गतियों का क्षणिक संघठन । इसके पीछे ही हमारा वास्तविक मानसिक और प्राणिक व्यक्तित्व है और इसका आधार है हमारा चैत्य पुरुष। हमारा वास्तविक पुरुष शान्ति , उदार तथा नीरव है । बाह्य प्रकृति से हटकर और पृथक होकर ही इस अंत : पुरुष की शान्ति में निवास करना संभव होता है, तब बाह्य प्रकृति के साथ तदात्मता नहीं रहती । आगे चलकर , चैत्य की अनुभव – शक्ति तथा ऊर्ध्व स्तर की शान्ति , शाक्ति और ज्योति द्वारा बाह्य सत्ता को बदलना अधिक आसान हो जायेगा ।
पथ

तुम्हें उन तीन चीज़ों का ज्ञान है ही जिन पर उपलब्धि का आधार रखना है :

(1) मन से ऊपर के स्तर पर आरोहण और विश्व -चेतना के उन्मीलन पर;
(2) चैत्य उन्मीलन पर;और
(3) सत्ता के अत्यंत स्थूल स्तर पर्यंत सभी स्तरो में उच्चतर चेतना के अपनी शांति , ज्योति , शक्ति , ज्ञान , आनन्द आदि सहित अवतरण पर।

यह सब तुम्हारी अभीप्सा , भक्ति और शरणागत की सहायता से माताजी की शक्ति की क्रिया संपन्न किया जाना है ।

यह है पथ । शेष सब तो इन चीज़ों के कार्यान्वित होने की बात है जिसके लिये तुम्हें माताजी की क्रिया में श्रद्धा रखनी होगी ।
तीन मूल उपलब्धियाँ

इस योग की मूल उपलब्धियाँ ये हैं :-

(1) चैत्य परिवर्तन जिससे पूर्ण -भक्ति , माताजी के साथ सतत सायुज्य की अवस्था में और उनकी उपस्थिति में, हृदय की प्रधान प्रेरिका और विचार तथा जीवन एवं कर्म की शासिका बन सके ।

(2) उच्चतर चेतना की शांति , शक्ति ज्योति आदि का मूर्धा और हृदय में से होते हुए सम्पूर्ण सत्ता के भीतर अवतरण , जो शरीर के कोषाणुओं तक को आधिकृत कर ले ।
(3)सर्वत्र एकमेव और भगवान को अनन्त भाव में देखना , सर्वत्र मातृशक्ति को और उस अनन्त चैतन्य में निवास करना।

चैत्य पुरुष , अंत:कररग और अंहभाव

मैं नहीं जानता कि 'अंत:करण' शब्द का ठीक अर्थ क्या है – यह इतना अस्पष्ट और सीमित है कि इसके द्वारा चैत्य पुरुष का वर्णन नहीं किया जा सकता । अंत:करण साधारणत: शरीर से भिन्न मन और प्राण को सूचित करता है – शरीर आत्मा का बाह्यकरण है और मन -प्राण आंतर करण। चैत्य से मेरा अभिप्राय शुद्ध मन और प्राण से भिन्न किसी और वस्तु से है। शुद्ध मन और प्राण जागृत एवं मुक्त चैत्य पुरुष क्रिया का फल है पर ये स्वयं चैत्य नही हैं ।

ऐसे ही अंहभाव शब्द के अर्थ पर सब कुछ निर्भर करता है । परन्तु चैत्य कोइ भाव (अवस्था) नहीं है। यह पुरुष है । अंहभाव प्रकृति की रचना है , यह कोइ पुरुष नहीं है । अंहभाव मिटा जा सकता है और पुरुष फिर भी विद्यमान रहेगा ।

मुक्त चैत्य पुरुष से मेरा मतलब यह है कि वह अब पहले की तरह अन्धकारमय और अज्ञानयुक्त करणों के नियमों के अनुसार एवं पर्दे के पीछे से ही अपने को प्रकट करने लिये बाधित नहीं होता , बल्कि आगे आने और मन, प्राण एवं शरीर के कार्य को नियंत्रित और परितर्तित करने में सक्षम होता है।

यदि संभवत:कभी इसे पवित्रीकृत एवं पूर्णताप्राप्त कहा भी गया है तो उससे मन , प्राण और शरीर -रुपी करणों में चैत्य क्रिया ही अभिप्रेत रही होगी । पवित्रित अंत:सत्ता का अभिप्राय पवित्रित चैत्य नहीं बल्कि पवित्रित आंतर मन , प्राण एवं शरीर है । चैत्य के लिये मैंने जिन विशेषणों का प्रयोग किया था वे 'जागृत' और मुक्त" थे।

आध्यात्मिक व्यक्तिभाव तो अस्पष्ट शब्द है और इसका नाना प्रकार से अर्थ किया जा सकता है । चैत्य सत्ता के विषय मैं लिख चुका हूँ कि चैत्य अन्तरात्मा है या उस भागवत अग्नि की चिनगारी है जो भूतल पर व्यक्ति के विकास में सहायता देती है और चैत्य पुरुष वह अंतरात्मा -चेतना है जो मन , प्राण और शरीर को यंत्र बनाकर अपने को या सच पूछो तो अपनी अभिव्यक्ति को जन्म – जन्मांतर में विकसित करती चलती है जब तक कि सब कुछ भगवान -मिलने के लिये तैयार नहीं हो जाता । मुझे नही मालूम कि मैं इसमें कोइ और बात जोड़ सकता हूँ ।
वैयक्तिक प्रकृति के आंतरात्मिक परिवर्तन का महत्व

अपनी साधना के विषय में जो तमुने लिखा है वह मैंने पढ़ लिया है । मैं समझता हूँ इस सम्बन्ध में कुछ कहने की आनश्यकता नहीं क्योंकि सब ठीक चल रहा है; केवल एक बात है जो तुम्हारी लिये अति महत्वपूर्ण है। तुम अपने हृदय में चैत्य अग्नि प्रज्वलित कर लो और इस बात के लिये अभीप्सा करो कि चैत्य पुरुष आगे आकर साधना की बागडोर अपने हाथ में लै ले ।जब वह ऐसा करने लगेगा तो अहं की जिन अप्रकट ग्रंथियों के तुमने जिक्र किया है उन्हें तुम देख सकोगे । साथ ही वह उन्हें नि:शक्त कर देगा अथवा चैत्य अग्नि में भस्म कर देगा । यह चैत्य -विकास और मन , प्राण और भौतिक चेतना का चैत्य रुपांतर बहुत ही आवश्यक है क्योंकि यह उच्चतर चेतना के अवतरण और आध्यात्मिक रुपांतर को सरल और सुरक्षित कर देता है , इसके बिना अतिमानस तक पहुँचना सदैव कठिन होता है । शक्तियों आदि का भी अपना स्थान है , पर इस कार्य के अभाव में वह अत्यंत गौण है ।

आकस्मिक चैत्य उद्घाटन

यह तो खूब प्रत्यक्ष है कि 'द' का आध्यात्मिक अनुभव के प्रति आकस्मिक उद् घाटन , वास्तव में आश्चर्यजनक रुप में आकस्मिक उद्घाटन हुआ है । पर ऐसा प्राय : होता है , विशेषकर जब बाह्य मन शंकाशील हो और आत्मा अन्दर अनुभव के लिये परिपक्व हो चुकी हो । ऐसी अवस्थाओं में भी यह प्राय : किसी आघात के बाद घटित होता है- जैसे यहाँ उसके भाई की बीमारी थी । पर मेरे विचार में उसके मन में पहले ही परिवर्तन हो चुका था और उसी ने उसे तैयार कर दिया था। यह आचानक और लगातार होनेवाला अंतर्दर्शन भी इस बात का सूचक है कि अन्दर एक ऐसी शक्ति है जिसने उसे बन्द कर देनेवाले सभी द्वारों का तोड़ दिया है ; यही अतिभौतिक दिव्य दृष्टि की शक्ति है ।' आत्मा -निवेदन ' शब्द का आना भी इन अनुभवों का एक परिचित अंग है, इसी को मैं चैत्य पुरुष की आवाज कहता हूँ । यह उसकी अपनी आत्मा द्वारा मन को दी गई सूचना है कि उसे क्या करना चाहिए । अब उसे इसके लिये स्वीकति देनी होगी क्योंकि इसे फलदायी , बनाने के लिये प्रकृतिऔर बाह्य पुरुष का इस आन्तरिक आवाज से सहमत होना आवश्यक हो जाता है । वह अब मोड़ पर खड़ा है; जिस मार्ग का अनुसरण करने के लिये उसकी आंतरिक सत्ता अर्थात् उसकी अन्तरात्मा उससे आशा रखती है उसका संकेत उसे मिल चुका है, परन्तु जैसा मैंने कहा है, मन और प्राण की स्वीकृत आवश्यक है । यदि वह आत्मनिबेदन करने के लिये निश्चय कर सकता है तो उसे आत्मनिवेदन का संकल्प कर लेना चाहिये , अपने आपको भगवान् के प्रति समपर्ति कर देना चाहिये और सहायता और पथप्रदर्शन के लिये उनसे प्रार्थना करनी चाहिये । यदि ऐसा वह अभी नहीं कर सकता तो उसे प्रतीक्षा करनी चाहिये – इस बात का ध्यान रखते हुए कि जो अनुभव शुरु हो चुका है वह किस प्रकार आगे बढ़ता और विकसित होता है । उसे ऐसा करत चला जाना चाहिये जब तक वह अनुभव उसके लिये पूर्ण रुप से निश्चयात्मक नहीं हो जाता । सहायता उसे मिलेगी और यदि वह इसके प्रति सचेत हो जाय तो कोइ और प्रश्न ही नहीं रह जाता; मार्ग पर आगे बढ़ना उसके लिये सरल हो जायेगा ।

चैत्य अनुभव प्रकृति का चैत्य परिवर्तन

निश्चय ही यह बहुमूल्य अनूभव था; अत्युकृष्ट चैत्य अनुभव था । "अन्तर में मखमली मृदुता का – अनिर्वचनीय नमनीयता का वेदन" चैत्य अनुभव ही है और इसके सिवा यह कुछ नही हो सकता । इसका अभिप्राय है चेतना के उपादान का परिवर्तन – विशेषकर तुम्हारे प्राणिक भावमय अंग में । इस प्रकार का परिवर्तन यदि तब तक जारी रहे या बार –बार होता रहे जब तक कि यह स्थायी नहीं हो जाता तो यह सत्ता के चैत्य रुपांतर में एक बड़ा कदम होगा । आतंरिक उपादान के ठीक यही परिवर्तन रुपांतर को संभव कर देते हैं। अपिच , ऐसे परिवर्तन के द्वारा ही ज्ञान का उदय संभव हो जाता है - क्योंकि योग में ज्ञान से हमारा अभिप्राय आध्यात्मिक विषयों के सम्बन्ध में विचार या भावसमूह से नहीं बल्कि अन्दर के चैत्य बोध और ऊपर के आध्यात्मिक आलोक से होता है । अतएव इसके प्रथम परिणाम के रुप में तुम्हें यह अनुभव हुआ कि "इस विषय को बिलकुल न समझने में कोइ अपमान कीबात नहीं है और सच्चा बोध तभी प्राप्त होगा जब व्यक्ति यह समझ जाय कि वह सर्वथा असमर्थ है ।" यह , अपने आप में , बोध का आरंभ है – एक चैत्य बोध है , अन्तर में अनुभूत एक ऐसी वस्तु है जो प्रकाश डालती है या उस आध्यात्मिक सत्य को उद्घृत करती है जो चिंतनमात्र से प्राप्त न होता , साथ ही यह एक ऐसा सत्य भी प्रदान करती है जो तुम्हारे लिये अपेक्षित प्रकाश और आश्वासन लाने में सक्षम है, क्योंकि चैत्य पुरुष अपने संग प्रकाश एव सुख , आंतर बोध और विश्रांति और सांत्वना सदा ही लाता है ।

इस अनुभव का एक और अत्यंत आशाजनक पहलू यह है कि भगवान से की गई विनती के उत्तर में तत्क्षण ही प्राप्त हुआ । तुमने बोध और निस्तार – मार्ग के लिये मनुहार की और कृष्ण ने दोनों तुम्हारे सामने तुरन्त प्रकट कर दिये – निस्तार -मार्ग था आभ्यंतरिक चेतना का परिवर्तन , वह नमनीय स्वभाव जो ज्ञानोदय को संभव कर देता है और साथ ही मन एवं प्राण की अवस्था का वह बोध जिसमें सच्चा ज्ञान या सच्ची ज्ञान -शक्ति आ सकती है । कारण , आंतरिक ज्ञान अन्दर और ऊपर से आता है (चाहे हृदयस्थ भगवान् से आवे या ऊर्ध्वस्थ आत्मा से) और उसके आने के लिये , तलीय मनसिक विचारों के सम्बध से मन एवं प्राण का गर्व और उन्हीं पर इनका आग्रह समाप्त होना आवश्यक है । ज्ञान का उदय हो सकने से पूर्व मनूष्य को यह जानना आवश्यक है कि मैं अज्ञानी हूँ । इससे यह स्पष्ट हो जाता कि निस्तार के एकमात्र मार्ग के रुप में चैत्य उद घाटन पर बल देने में मेरी कोई भूल नहीं है । बात यह है कि ज्यों ही चैत्य उद् घाटित होता है, ऐसे प्रत्युतर – और साथ ही और भी बहुत कुछ - सामान्य बन जाते है, इसके अतिरिक्त आन्तर परिर्वतन में भी प्रगति होती है जिससे ये संभव हो जाते हैं ।

अन्तरात्मा को पाने की आवश्यकता

इसमें संदेह नहीं कि ऊपर हम सीरी समस्याओं से मुक्त हो सकते है , क्योंकि समस्याएँ वहाँ रह ही नहीं जाती । पर नीचे तो समस्याएँ वैसी ही बनी रहती हैं और जब वहाँ इतने सारे प्रश्न पड़े हैं और समाधान की मांग कर है तब हम ऊपर चड़ सकते हैं , उसी तरह भीतर गहराई में उतरने की ही हमें आवश्यकता है । जो हुआ , वह भावमय सत्ता की तरह पर हुआ था और यदि कोई केवल वहीं टिका रहे , तो भाव – सम्बधी कठिनाइयाँ आ सकती हैं । परन्तु करणीय यह ,है कि हम सतह पर न रहकर अन्दर की गहराई में जायं क्योंकि अन्तरात्मा भावमय सतह के पीछे , हत्केंन्द्र के पीछे गहराई में स्थित है । एक बार वहाँ पहुँचने पर फिर ये कठिनाइयाँ नहीं छुतीं । वहाँ आंतरिक शान्ति और सुख , अक्षुब्ध अभीप्सा , और माताजी की समीपता अथवा उनकी उपस्थिति ही मिलेंगी ।

स्थूल प्रारग और विशुद्ध प्रारग

यह चैत्य पुरुष की अभीप्सा है , चैत्य अग्नि है । जहाँ फल के लिये अधीरता , और फल की तात्कालिक प्राप्ति के अभाव में असंतोष है, वहीं प्राण का प्रवेश हुआ जानना चाहिये । यह नहीं होना चाहिये । इस प्रकार का कार्य करना तलीय असंस्कृत प्राण की प्रकृति है । विशुद्ध प्राण इससे भिन्न होता है ; वह तो शान्त और बलवान् और भगवान को समर्पित एक शक्तिशाली साधन होता है । परन्तु उसके आगे आने के लिये पहले हमें ऊपर मन में इस प्रकार समाहित स्थिति प्राप्त करनी आवश्यक हैं। जब चेतना विद्यमान हो और मन शान्त , मुक्त एवं विशाल हो , तो विशुद्ध प्राण आगे आ सकता है ।

अहमात्मक और चैत्य सलज्जता

सलज्जता की बात पर आवें , वह दो प्रकार की होती है: एक होती है अहमात्मक , सत्य को प्रकट करने में लज्जा बोध करना अथवा ऐसे ढंग से उसके प्रति अपनी भक्ति दिखाना जो दूसरों की समझ में न आवे ; दूसरो है एक विशेष प्रकार का गोपन – भाव , दूसरों की दृष्टि के सामने अपने गभीरता भावों को खोल रखने की अनिच्छा , भगवान के साथ के अपने प्रेम – सम्बन्ध को पवित्र और गुप्त बनाये रखने की इच्छा – यह एक चैत्य -भाव है ।

ऊर्ध्वमुख उद् घाटन

मैं कह सकता हूँ कि ऊर्ध्वमुख उद् घाटन ,- प्रकाश में आरोहण और उसके बाद साधारण चेतना एवं सामान्य मानव जीवन में प्रकाश का अवरोहण -योग साधना में एक अत्यंत व्यापक और सर्वप्रथम निर्णायक अनुभव है। आध्यात्मिक परिवर्तन जिन लोगों के भाग्य में लिखा हुआ है , उनमें यह उद्घाटन योगाभ्यास के बिना भी सुचारु रुप से हो सकता है, विशेषकर तब जब कि उनमें कहीं साधारण जीवन से असंतोष है , तथा किसी और , महत्तर या श्रेष्ठतर , वस्तु की ललक विद्यमान है। प्राय: यह ठीक उसी ढंग से संपन्न होता है जिसका उस साधिका ने वर्णन किया है और अनुभव का निरोध और अवतरण भी उसी प्रकार से होते हैं । इस प्रथम अनुभव के बाद एक ऐसा सुदीर्ध काल आ सकता है जिसमें न तो इसकी पुनरीवृत्ति हो और न ही इसके बाद का कोइ और अनुभव । यदि योग का अनवरत अभ्यास किया जाय तो यह अन्तराल इतना लंबा होना आवश्यक नही;परन्तु ऐसा होते हुए भी यह प्राय: काफी लंबा होता है। अवतरण अनिवार्य है क्योंकि सारी की सारी सत्ता नहीं बल्कि अन्दर की कोइ चीज ही ऊपर उठी है, किन्तु शेष सारी प्रकृति तैयार ही नहीं है, वह साधारण जीवन में ग्रस्त या आसक्त है और ऐसी चेष्टाओं के वशीभूत है जो प्रकाश से समस्वर नहीं है । , तो भी , अन्दर की वह चीज़ सत्ता की कोइ केंद्रीय वस्तु है और अतएव वह अनुभव एक प्रकार से सुनिश्चित और निर्णायक है । कारण, यह आध्यात्मिक भवितव्यता की निर्णायक सूचना और उस वस्तु के संकेत के रुप में प्राप्त होता है जो जीवन में किसी समय उपलब्ध होकर रहेगी । एक बार जब यह प्राप्त हो गया है तो कोई ऐसी प्राप्ति अवश्य होगी जो मार्ग खोल देगी , यथार्थ ज्ञान और यार्थाथ भाव का निर्धारण करेगी जिससे मनुष्य पथ पर अग्रसर हो सके और साथ ही वह उसके लिये एक सहायक प्रभाव भी लायगी । उसके बाद , उन विघ्नों को दूर करने क कार्य आरंभ किया जा सकता है और उत्तरोत्तर पूर्ण हो सकता है जो सपूर्ण सत्ता के प्रकाश की और लोटने ओर आरोहण करने एवं संपूर्ण सत्ता के भीतर प्रकाश का आरोहण होने में – जो आरोहण के समान ही महत्त्वपूर्ण है – बाधा डालते हैं । इसमें देर लग सकती है या यह जल्दी भी हो सकता है, यह तो आंतर संवेग पर और साथ ही बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर है परन्तु परिस्थितियों की अपेक्षा आंतर अभीप्सा और पुरुषार्थ का महत्त्व कहीं बढ़कर है क्योंकि यदि आंतर आवश्यकता अति प्रबल हो तो परिस्थितियों तो अपने को उसके अनुकूल बना सकती है । उस साधिका के लिये अवसर आ गया है और जो आवश्यकीय अभीप्सा एवं ज्ञान और जो प्रभाव से सहायता पहुँचा सकते है उनका भी मूहर्त आ पहुँचा है ।

ऊर्ध्व गति

आरोहण – गति या ऊर्ध्वमुख गति तब होती है जब सत्ता अर्थात् उसके विभिन्न मानसिक , प्राणिक और भौतिक स्तरों में पर्याप्त अभीप्सा होती है । इनमें से प्रत्येक , बारी – बारी से , मन से ऊपर उस स्थान तक जाता है जहाँ उसका सम्बन्ध अतिमानस से होता है; वहीं से तब उसकी सब क्रियाओं का गति मिलने लगती है । उच्चतर चेतना तभी नीचे उतरती है जब तुम्हारी सत्ता के विभिन्न स्तरों में ग्रहणशील अचंचलता हो और वे उसे ग्रहण करने को तैयार हों । दोनों दशाओं में – चाहे तुम उच्चतर चेतना तक उठने के लिये अभीप्सा कर रहे हो अथवा निष्क्रिय रहकर उच्चतर चेतना को ग्रहण करने के लिये अपने आपको खोल रहे हो, - सत्ता के विभिन्न भागों में पूर्ण शांति होनी आवश्यक है – यही सच्ची अवस्था है । यदि तुम्हारी स्थिर अभीप्सा अथवा संकल्प में आवश्यक शक्ति न हो और यदि तुम्हें यह पता लगे कि कुछ हद तक प्रयत्न करने से तुम्हें ऊपर उठने में सहायता मिलेगी तो तुम तब तक साधन के रुप में इसका प्रयोग कर सकते हो जब तक वह स्वाभाविका उन्मुखता ही नही उत्पन्न हो जाती जिसमें एक नीरव आह्वानअथवा एक सरल और अप्रयत्नशोल संकल्प ही उच्चतर शक्ति को कार्य करने के लियो प्रेरित कर सकता है ।

उच्चतर चेतना की ओर आरोहण

तुममें कोई ऐसी चीज़ है जो उच्चतर चेतना के प्रति सचेतन हो चुकी है और सिर से ऊपर उस स्थान तक पहुँच चुकी है जहाँ सामान्य चेतना और उच्चतर स्तरों का मेल होता है। इस मेल को बढ़ाते चले जाना चाहिये जब तक कि चेतना का संपूर्ण स्त्रोत ही वहाँ न बन जाय और शेष सब कुछ वहाँ से न संचालित होने लगे । साथ ही अंतरात्मा को मुक्त करना चाहिये जिससे वह मन और प्राण में तथा भौतिक अंगो में इस ऊपर के कार्य को संपुष्ट कर सके।

यही आत्मा है , मन से ऊपर आध्यात्मिक सत्ता है- इसका पहला अमुभव नीरवता और स्थिरता के रुप में होता है (जो पीछे अनन्त और शाश्वत भी लगने लगती है) । तब इसे मन , प्राण और शरीर की क्रियाएँ छु नहीं पातीं । उच्चतर चेतना का सम्बध सदा आत्मा से रहता है , निम्नतर चेतना अज्ञान की क्रियाओं के कारण इससे अलग होता है ।

आरोहण में सूक्ष्म बाधा

विस्तृतता इस बात का संकेत है कि चेतना सामान्य सीमाओं से बाहर प्रसारित हो रही है । इस विस्तृतता की शुभ्रता का आशय यह है कि जो चेतना अनुभव में आ रही है वह शुद्ध चेतना है; यह माताजी की चेतना अथवा उसके प्रभाव को दर्शानेवाली श्वेत और उज्जवल ज्योति भी हो सकती है । जो सूक्ष्म बाधा तुमने महसूस की है वह की है वह निश्चय ही वही चीज़ होगी जो तुम्हें हृदय से ऊपर उठने तथा वहाँ से आगे ऊपर के स्तरों पर जाने से रोकती है। वहाँ सदा ही एक प्रकार का आवरण रहता है, उसे खोल देने या हटा देने से ही व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक ऊपर जा सकता है । व्यक्ति "अदृश्य विस्तृतता" को भी जान सकता है, पर जब तक ऐसा हो नहीं जाता वह वहाँ आत्मा -भाव लाभ नहीं कर सकता ।

उच्चतर शांति और शक्ति का अनुभव

जब ऊपर से उद् घाटन होता है तो साधना के सामान्य स्वाभाविका अनुभव ये होता हैं -ब्रह्म , आत्मा या भगवीन् की शांति से संपर्क । और उच्चतर शक्ति अर्थात् श्री माताजी की शक्ति से संपर्क । स्भावत:ही वह इनका अर्थ नहीं समझता पर इन्हें बिल्कुल ठीक है । इस अनुभव का इससे अच्छा वर्णन और क्या हो सकता है : "सब कितना सुन्दर , शांत और स्थिर प्रतीत होता है मानों जल में एक भी तरंग न हो । पर यह शून्यता नहीं है , मैं एक सजीव 'उपस्थिति' अनुभव करता हूँ किन्तु ध्यान में मैं पूर्णतया नीरव और शांत हूँ।" यह अनुभव भगवान् की शांति और नीरवता में स्वंय भगवान् का है। शक्ति के बारे में भी उसका अनुभव बिल्कुल ठीक है , "यह कोई ऐसी चीज़ है जो अभिव्यकत सृष्टि (मन और जड़ पदार्थ)से ऊपर की है , एक पीछे की शक्ति है जो काम , क्रोध और अन्य आवेगों को जन्म देनेवाली शक्ति से भिन्न है;ये आवेग धीरे -धीरे शुद्ध और रुपांतरित कर दिये जाते हैं।" दूसरे शब्दों में यह दिव्य और आध्यात्मिक शक्ति है , यह वह वैश्व – प्राण शक्ति नहीं है जो सामान्य मूर्त्त चेतना की सहायता करती है; यह भी बहुत स्पष्ट है । मेरे विचार में यह अभी तक संपर्कमात्र है , पर यदि यह इतनी ही स्पष्ट और सच्ची

भावना को जन्म दे सके तो यह एक बड़ा सच्चा और स्पष्ट संपर्क हो सकता है । उसका आरंभ खूब अच्छा प्रतीत होता है ।

वैश्व चेतना से पहले आत्मा – उपलब्धि के लाभ

आत्मा की शान्ति ,नीरवता , पवित्रता और स्वतंत्रता में निवास करने की पहली आवश्यकता मुक्ति है । इसके साथ या पीछे यदि मनुष्य वैश्व चेतना के प्रति जाग्रत हो जाय तो वह स्वतंत्र होते हुए सब वस्तुओं के साथ भी एक अनुभव कर सकता है ।

बिना मुक्ति वैश्व चेतना प्राप्ता करनी संभव तो है , किन्तु उस अवस्था में सत्ता निम्नतर प्रकृति से किसी प्रकार भी मुक्त नहीं होती और व्यक्ति अपनी विस्तृत चेतना में अनेक शक्यों का क्रीड़ास्थल बन सकता है , स्वतंत्र रहने अथवा उन्हें वश में करने में असमर्थ हो जाता है ।

इसके विपरीत, यदि आत्मा – उपलब्धि हो चुकी हो तो सत्ता में एक एसा भाग हो जाता है जो वैश्व शक्तियों की क्रीड़ा के बीच भी अछूता रहता है ; और यदि समस्त आन्तरिक चेतना में आत्मा की शांन्ति और विशुद्धता स्थापित हो चुकी हो तो निम्नतर प्रकृति के बाह्यतर स्पर्श न तो प्रवेश कर सकते हैं और न ही उसे अभिभूत कर सकते हैं । यदि आत्मा –उपलब्ध वैश्व चेतना से पहले आये तथा उसे आधार रुप से सहायता दे तो यही लाभ होता है ।

"परमानंद की आवाज"

-उषामौर्य

हे मानव ! क्या तू अपने जीवन पथ पर बिना विश्राम किये, बिना रूके अनवरत् चलता ही रहेगा ? क्या तू जगत् और जीवन को केवल बाह्य चक्षुओं से ही देखता रहेगा ? हे पथिक !जब तू चलते –चलते थक जाता है तब तू राह मे ऐसे मुकाम ढूँढता है जहाँ घने वृक्षों का कुंज हो , जिसकी छाँव में तू कुछ पल बैठकर अपने थके हारे मन, प्राण , शरीर को विश्राम दे सके और जहाँ कुछ पल ठहरकर तू अपने आगे की जीवन यात्रा प्रारम्भ कर सके । किन्तु सच बता क्या तू इतने ही बाहरी विश्राम से संतुष्ट हो जाता है? मै जानता हूँ तेरा मन सतत् विश्राम चाहता है । शान्ति चाहता है , आनन्द चाहता है किन्तु तू इन्हें बाहर खोजता है और तू नही जानता कि ये सभी बाहर तूझे तभी मिलेगें जब ये तूझे पहले अपने भीतर मिल जायें ।

क्या कभी तूझे मेंरे सूर्य , चन्द्र ,ग्रह , नक्षत्र ,तारे , नीलाकाश , आकाश को छूने की आकांक्षा लिए बढ़ते पेड़ –पोधे , वृक्षों से पल्लवित ,पुष्पित , सुकोमल, सुरभित विविध रंगो से निखरे पुष्प ,ये मनोरम उपवन , ये कलरव करते चहचहाते अपने नीड़ को लौटते पक्षीगण, ये उषा की किरणे, ये संध्या की गोधूलि बेला , नदियाँ , पहाड़ , कलरव करते झरने ये सभी क्या तूझे एक पल रुक कर कुछ सोचने के लिये बाध्य नहीं करते, मैं जानता हूँ कि सर्वदा अपने कार्य के पश्चात कुछ विश्राम चाहता है केवल शारिरिक ही नहीं मानसिक भी किन्तु तू यह नही जानता कि तूझे विश्राम कहाँ मिल सकता है ?

तेर मन के घनघोर जंगल से दूर बहुत दूर तेर हृदय की अतल गहराइयों में एक अत्यन्त एकानत्त गुफा है यहाँ मन भी नहीं जा सकता वहाँ केवल तू ही प्रवेश कर सकता है । वहाँ बैठकर मैं तेरी अनन्त जन्मों से प्रतीक्षा कर रहाँ हूँ । जहाँ पहुँचकर तू मेरी बाँसूरी सुन सकता है, तू मुझे पा सकता है । वहाँ तू ऐसा प्रकाश पा सकता है जो तूझे तो प्रकाशित करेगा ही तू उससे जगत् को प्रकाशित करेगा । अत: अब तू मान जा और अपने विश्राम के मूल उद्गम स्रोत की खोज कर ।

तू यह बात अच्छी तरह समझ ले कि इस सृष्टि में मैंने केवल तुझे इसलिये बनाया है कि तुझ पर मैं अपने आनन्द की, प्रेम की शान्ति की अनंत असीम महिमा बरसा सकूँ , केवल तुझ पर । मैंने इस धरा पर इन्हें पाने का अधिकार केवल तुझे ही दिया है । इसलियें हे मानव ! अब तू जाग ,उठ और मेरी पुकार सुन, यह पुकार मेंरी ही आवाज है जो तेरे अन्तस्तल पर निरन्तर मुखरित हो रही है , स्पंदित हो रही है , तरंगित हो रही है , उसे तू सुन और उसका अनुभव कर ।

तूने मेर बिना न जाने कितने जन्म कितने जन्म गुजारे हैं, कितने थपेड़े जीवन के सहे हैं, कितने आँधी तूफानों से तू गुजरा है, अब तो बहुत देर हो चुकी है और तू बहुत थक गया है अब तो मेरी आवाज सुन ले औऱ मेरी शरण मे आ जा । तू नही जानता कि जिस तरह तेरे बाह्य जीवन की समस्याएँ कभी न खत्म होने वाली हैं ,कठिन हैं , उसी तरह तेरे अन्तरतम में मेरी कभी न खत्म होने वाली असीम ,अनंत ,शाश्वत प्रेम ,शान्ति तथा आनन्द की शक्ति ,निरन्तर चिरन्तन प्रवाहमान है। जो करुणा बरस रही है उसका तू रसपान कर,उसमें तू अवगाहन कर ,और मुझमें तू अपने जीवन की कभी न खत्म होने वाली , समस्याओं का ,सामाधान ढूँढ। मैं तेरे सारे कष्ट ले लूगाँ और तुझे अपने अनंत शांति और प्रेम से भर दूँगा और तूझे जीने के महामंत्र दूँगा ।

औ मेंरे अमृत –पुत्र ! मै तु गंगांजल की तरह पवित्र कर दूँगा तेरे रिक्त पात्र को भर दूँगा । तू मुझे पर विश्वास कर और अपने मूल अस्तित्व की ओर लौट चल, तुझे यह राह योग ही दिखा सकता तू अनुसरण कर और अपने जीवन को इस बार तो धन्य बना ले । तथा कृपा से तू कृतज्ञ हो जा। तू नहीं जानता कि मेरे बिनातेरा जीवन सुना है,उदास है, तेरे मन के उपवन में कभी फूल नहीं खिले, तेरे अंदर पतझड़ ही पतझड़ है । मैं तेरे अंदर बसंत की बहार ला दूँगा और तेरे अन्दर ऐसा महोत्सव सजा दूँगा जो कभी उजड़ता नही, जहाँ केवल एक ही मौसम होता है , “परमानन्द का मौसम”।

ओ मेर पुत्र! अब तो जाग जा और योग स जुड़ जा। तेरा कल्याण हो , तेरा मंगल हो ।
ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

आह्वान उसी का पाता हुँ
मन की आँख से देवता हूँ ,
सबको उसी में पाता हूँ .
जिधर भी दृष्टि गढ़ाता हूँ ,
विस्तार उसी का पाता हूँ ।
चाँद की शीत रश्मियों में
सौन्दर्य उसी का पाता हूँ ,
सूरज की तीव्र तपन में
स्वाद मीठा उसी का पाता हूँ ।
साँसों की नम आर्द्रता में ,
जीवन –वाष्प उसी का पाता हूँ ,
दिल की धड़कनों में,
संगीत उसी का पाता हूँ ।
तन गया वितान अतिमानव का ,
छाया उसी की पाता हूँ,
गर्जन –तर्जन –घन में –
जीवन धार उसी में पाता हूँ ।
कहेंगे पागल मुझे ,
रूमानियत का मेरा विश्व ,
सिसकती आवाजों में,
आह्वान उसी का पाता हूँ ।
जब तक दृष्टि मेरी है,
“मैं” में भी उसी का पाता हूँ ,
टूटा घेरा उसका तो –
“मैं”में मैं को ही पाता हूँ ।

-बाबूलाल श्रीमयंक

आध्यात्मिक शिक्षा – एक आत्मावलोकन

-डा.आलोक पाण्डे

उपनिषद की एक सांकेतिक कथा हैं । नारद अनेक प्रकार के शास्त्र एंव विद्याओं में पारंगत हो चुके हैं । चौसठ कलाओं में वे निपुण हैं । परंतु यह सब कुछ सीखने और जानने के बाद भी उनके हृदय में एक गहरा असंतोष व्याप्त है । अपनी इस अन्तर्व्यथा का अर्थ उन्हें समझ में नहीं आता । कोई भी विद्या , कोई भी विशारद उनकी समस्या का हल उन्हें नहीं दे पाता । तब अपनी व्यथा को संजोय हुए अपने असंतोष का समाधान ढूँढ़ने नारद ऋषि सनत् कुमार के पास जा पहुँचते हैं । नारद जब अपनी व्यथा सनत्कुमार को समझाते हैं तो ऋषि पूछते हैं , -"हे नारद ! तुमने अब तक क्या सीखा है ? नारद अपनी नाना प्रकार की विद्याओं का वर्णन करते हैं । तब ऋषि मुस्कुरा कर कहते है , -'नारद तुम्हारी व्यथा का कारण यही है कि अब तक तुमने जो कुछ सीखा है वह अपरा विद्या है । तुम्हारे ज्ञान की अभीप्सा का , तुम्हारे हृदय की व्यथा का, तुम्हारे जीवन के संकल्प का इनमें उत्तर नहीं है। ' नारद स्वाभाविक ही पूछ बैठते हैं , - 'तो फिर वह क्या है जो इतना महत्वपूर्ण है , जो मैंने अब तक नहीं सीखा। 'ऋषि उत्तर देते हैं ,-' वह है ब्रह्मविद्या , जिसको जानने के उपरान्त ही सब कुछ जाना जा सकता है ।'

यह कथा एक संकेत है । नारद की व्यथा आज भी हमारी पीड़ा में उपस्थित है । हम विद्यालय जाते हैं , बहुत कुछ पढ़ते सीखते हैं, अपनी पढ़ाई पर गर्व भी अनुभव करते हैं , परंतु वह सारी शिक्षा जैसे हमें जीवन से जोड़ नहीं पाती । उसमें हमें अपनी आत्मकथा का उत्तर नहीं मिलता । सूचनाएँ मिलती है, लेकिन सत्य छिपा रह जाता है । तकनीक का पता चलता है , पर ज्ञान पर चादर ढँकी रहती । कलाओं में महारत हासिल करते हैं, परंतु सौंदर्यबोध अधूरा रह जाता है । बाहरी परस्थिति बदलने की शक्ति तो प्राप्त होती है , परंतु अन्तर्व्यथा को सुलझाने की कुंजी खो जाती है । और जब हमें अपने अंतर में छिपी अभीप्सा का प्रथम स्पर्श होता है , तब होता है हमारी शिक्षा का सच्चा प्रारभ ।

प्रश्न उठता है , - क्या यह संभव है कि यह शिक्षा बालपन से ही प्रारभ की जाए ? अगर हाँ तो फिर इस शिक्षा का क्या स्वरूप हो, इसका सिद्धांत और प्राकृत रूप कैसा हो, इत्यादि , इत्यादि । भारत की परम्परा में ऐसे अनेक बालकों का उदाहरण मिलता है जिनको जीवन के प्रारंभिक दिनों से ही ब्रह्म-विद्या की शिक्षा दी गई थी । आरुणि ,नचिकेता , श्वेतकेतु, कवश,ऐत्तरेय केवल नाम नहीं हैं, बल्कि एक संभावना का प्रतीक हैं । एक एसी संभावना जो हर मानव शिशु के अंदर विद्यमान है । और शिक्षा का, कम से कम सच्ची सिक्षा का उद्देश्य इस उच्चतम संभावना को प्रकट करना है ।

माता जी शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करती हैं, -'हम यहाँ भावी बालकों के लिये भविष्य का मार्ग । खोलने आए हैं । कैसी अद्भुत वाणी है यह ,-भविष्य का मार्ग । एक भविष्य वह है जिसकी हम दिन रात चिन्ता करते हैं । बच्चों के भविष्य की बात आते ही हम सोचने लगते हैं , आज से 20 वर्ष बाद 50 वर्ष बाद । हमारा बच्चा पढ़ –लिख कर एक महान आदमी बनेगा , सफल होगा, पदाधिकारी होगा, समृद्ध के सब सुख सुविधाओं से सम्पन्न होगा । स्वर्ग –भोग की यह कामना हम बच्चों के लिये करते तो है परंतु इन शब्दों का वास्तविक अर्थ खो बैठे हैं । हम भूल गये हैं कि बाह्य समृद्धि , आन्तारिक समृद्धि के अभाव मे एक अभिशाप बन सकती है । भोग मात्र स्वर्ग में नहीं होता, रावण की लंका में भी सभी प्रकार का भोग और ऐश्वर्य था । परंतु उस लंका को, असुर अहम् के कारण अग्नि में भस्मीभूत होना पड़ा । अटलांटिस और ट्राय , हस्तिनापुर और रोम के समृद्धि समाज का भी यही हश्र हुआ । कारण स्पष्ट हैं,-स्वराज के बिना साम्राज्य एक भिखारी के माथे पर हीरों के मुकुट के समान है ।माता जी इन 20या 40 वर्षों के भविष्य की, मानव –चेतना के भविष्य की बात कर रहीं । वे तो मनुष्य के भविष्य मानव –चेतना के भविष्य की बात कर रही हैं । सन् 1964 में जब माता जी से राष्ट्रीय शिक्षा के मूल दोष और उसके समाधान का मार्ग पूछा गया तो हमें सावधान करते हुए उनका उत्तर था – (क) (सबसे बड़ा दोष यह हैं) सफलता ,पद और पैसे को अत्यधिक महत्व देना । (ख) समाधान यह कि) आत्मा से संपर्क और सत्ता के सत्य का विकास और उद्घाटन की आवश्यकता पर जोर देना।

माता जी शिक्षा के लक्ष्य की बात कर रही हैं, किसी सिद्धांत या प्रणाली की नहीं । क्योंकि सिद्धांत और प्रणाली लक्ष्य का ही एक मानसिक और व्यावहारिक स्वरूप है । अगर आत्मशिक्षा , ब्रह्मविद्या अति – आवश्यक है तो सिद्धांत भी आत्मा से जन्म लेगा । क्या सिद्धांत होगा इस अद्भुत शिक्षा का और इसका कैसा रूप हो । यहीं हमें सर्तक रहने की आवश्यकता है । पिछले कुछ शतकों से हम अध्यात्म का अर्थ जगत को त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लेना या जगत को मिथ्या कह कर किसी अनिर्वचनीय, अरूप , अकल्प , अव्यक्त सत्ता में मिल जाना समझते आये हैं । इस पारलौकिक सिद्धांत के कारण आज हम आध्यात्मिक शिक्षा का विज्ञान से , कला से, शारिरिक परिश्रम और खेलकूद से, भाषा ज्ञान से, शस्त्र विद्या से, चिकित्सा से, तकनीकी से , राज्यकर्म से एवं अन्य विद्याओं से सामंजस्य नहीं बैठा पाते । फलस्वरूप हम आध्यात्मिक शिक्षा को एक धार्मिक या नैतिक मूल्यों की शिक्षा या आधुनिक शब्दों में जीवन –मूल्यों की शिक्षा मात्र मान बैठते हैं । परिणाम यह होता है कि बालक तरूणावस्था में आते ही इस पारलौकिक , अव्यवहारिक , शिक्षा को या तो जगत जीतने की प्रबल इच्छा के कारण पूरी तरह से त्याग देता है या फिर वह एक दोहरा व्यक्तित्व जीने लगता है जो धीरे-धीरे जीवन में एक अवकुण्ठा बन कर उसका पीछा करती है । इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण उसकी शक्ति का सृजनशीलता में उपयोग नहीं हो पाता । या फिर कोई बिरला बालक ईश्वर की खोज में जगत को ठुकरा कर समाज से, लोकसंग्रह के कर्म से बाहर आकर लुप्त हो जाता है। यह तीनों ही विकल्प अधूरे हैं , अपूर्ण हैं । माता जी आध्यात्मिक शिक्षा का सिद्धांत स्पष्ट करती हुई कहती हैं , -'जड़ तत्व को आत्माद्घोटन के हेतु तैयार करना ।

क्या यह संभव है । क्या उस परम्चेतना में ,इस निर्मल विशुद्ध सच्चिदानन्द भाव में , क्या सनातन सत्य में हमारी जड़ता का , खडता का, अपूर्णता का समाधान है ? क्या ईश्वर को इस जगत में दिलचस्पी है ? उपनिषद की कथा , जिसकी हमने प्रारंभ में ही चर्चा की है स्पष्ट रूप में कहती है , -‘ ब्रह्म –विद्या वह है जिसको जानने पर ही सब कुछ जाना जाता ।’स्थान –स्थान पर हमें संकेत मिलता है , -सर्व खल्विदं ब्रह्मम् –जो कुछ भी है वह ब्रह्म ही है । गीता इसी तथ्य को दोहराते हुए अवश्य वृक्ष की तुलना देती है जिसमें जगत रूपी वृक्ष जड़ें ऊपर आकाश में बतलाई हैं । श्रीअरविन्द इस सत्य का उद्घाटन करते हुये बतलाते हैं कि सृष्टि एवं उसकी क्रिया –प्रक्रिया ब्रह्म से अलग नहीं हैं बल्कि उसी के प्रकाश से प्रकाशित है एंव उसी की परम शक्ति से प्रवाहित है । यह सृष्टि ब्रह्म के बीज से जन्मी है । इसका लक्ष्य ब्रह्म में वापस विलीन होना नहीं है । ब्रह्म में तो वह स्थित है ही । उसका लक्ष्य है इस ब्रह्म बीज में छिपी संभावनाओं को जन्म देना, ब्रह्म के अनन्त नाम –रूप की पुष्प –वाटिका बनकर खिल उठना । यह है सृष्टि का भविष्य ,आध्यात्मिक भविष्य , और इसी भविष्य को खोलने की कुंजी माता जी हमें देना चाहती हैं । इसी अतिसुन्दर भविष्य के प्रति वे हमारी सभी सम्भावनाओं को प्रेरित करती हैं । और इस महृत्व भविष्य के लिये ही वे परमा –शक्ति , जगत –जननी माँ हमें आध्यात्मिक शिक्षा का महत्व बतलाती हैं ।

मनुष्य ने स्वयं को अहम् और क्षुद्र कामनाओं की सीमा में बाँध रखा है । माँ हमें इसी पाश से मुक्त करना चाहती हैं । मनुष्य पर बंधन ही उसकी व्यथा का प्रमुख कारण है । ज्ञान की सीमा, शरीर की अनित्यता ,प्रेम और आनन्द की क्षणिकता , प्राण की अशक्तता ही उसकी अंतर्व्यथा का मूल कारण है । मनुष्य पर बंधन जगत का नहीं , अपने क्षुद्र अहम् का है । और यह अहम् –बोध तब तक नहीं जाता जब तक उसे आत्मा –बोध नहीं होता । अगर हम मेधा को असीम , वृहृत सत्य से जोड़ लें तो सृजनशीलता स्वत:ही प्रस्फुटित होने लगेगी ।और वह मानव सृजनशीलता की तरह भविष्य के प्रति अचेत, अशक्त , मात्र सुख सुविधाओं को भण्डार खड़ा करने वाली या सूचनाओं को पिरोने वाली सृजनीशलता नहीं रहेंगी । वह रहेगी ब्रह्म की सृजनीशीलता जो प्रतिक्षण एक नवीन सृष्टि का निर्माण करती हैं । हमारी भावनाएँ अगर दिव्य प्रेम से आप्लावित हो जाएँ , हमारे प्राण अगर संयम धारण करके दिव्य कर्म के प्रति तत्पर हो जाएँ , ये इन्द्रियाँ यदि वासनाजनित भ्रामक क्षणिक कालोन्मुख सुख त्याग कर परमानन्द की उपासना में एक –निष्ठा हो जाएँ तो विश्व में स्वत:ही एक नई संरचना , नए समाज , नए युग का निर्माण होने लगेगा ; जो आज हमें छलता है और जिसे ढूँढने में विज्ञान और दोनों ही असमर्थ रहे है , वह जगत अपना आवरण हटा कर स्वयं ही अपना सत्- स्वरूप प्रगट कर देगा । क्योंकि समस्त पदार्थ , चेतना की सारी अवस्थाओँ , सारी गतियों , सभी कलाओं , सभी शास्त्र एवं विद्याओं के मूल में एक अगाध स्रोत छिपा है जो निरन्तर सृजन कर रहा है । उस मूल को शिक्षा के माध्यम से पहचानना , और उसके प्रगटन में सहयोग देना ही आध्यात्मिक शिक्षा मूल सिद्धांत है । इस दिशा में पदार्थ विज्ञान और अध्यात्म –ज्ञान अलग नहीं होंगे बल्कि वे एक दूसरे के पूरक होगे । पदार्थ के पीछे छिपी चेतना का , और चेतना के पीछे स्थापित सद्वस्तु का प्रगटन होगा विज्ञान का आध्यात्मिक स्वरूप । इसी प्रकार मन की नाना अवस्थाओं के पीछे कार्यरता चेतना की गति का, दिशा का , उन्मूलन का , रूपान्तरण का ज्ञान होगा मनोविज्ञान का आध्यात्मिक स्वरूप । कला के पीछे भी स्वयं को उद्घाटित करती एक सौंदर्य शक्ति का रहस्य है । उसे ढूँढना और संगीत –नृत्य –चित्र –इत्यादि के माध्यम से उसे प्रगट करना, यह है कला का आध्यात्मिक स्वरूप ।

इसी प्रकार समाज के संगठन ,प्रकृति के नियम और अपवाद , भाषा एवं कविता की अभिव्यक्ति , शरीर की मुद्राएँ और आधि –व्याधि , इत्यादि सभी चेतना की अवस्थाओं के परिणाम हैं । उन अवस्थाओं को परखना , जानना और उन्हें सर्वशक्तिमान के संपर्क से बदलना , सही दिशा देना, यह है अनेकानेक विद्याओं का आध्यात्मिक स्वरूप । अगर ब्रह्म ही सबके मूल में है तो यही उचित है और शिक्षक का परम धर्म भी है कि वह विद्यार्थी को विद्या के माध्यम से उस मूल से संपर्क स्थापित करवाए ताकि विद्यार्थी की सृजनशीलता का द्वार खुल सके और वह मात्र सूचनाओं का केन्द्र नहीं बल्कि ज्ञान –प्रकाश का, मात्र भावुकता के भँवर में नहीं बल्कि प्रेम के आनन्द सागर का , क्षुद्र शक्तियों के झंझावात में फँसे इन्द्रिय –मन –प्राण में नहीं बल्कि अनन्त के विशाल शक्ति – पुंज का केन्द्र बन सके । और इसी में है सच्चे जीवन मूल्यों की भी शिक्षा । जीवन –मूल्य जीवन से अलग नहीं हैं , ना ही वे जीवन के परम उद्देश्य के मार्ग में अवरोध या बालक हैं । जीवन –मूल्य जीवन की दिशा और गति को और सबल बनाते हैं अगर हम उसमें आत्मा का प्रकाश उड़ेल दें । यही है आध्यात्मिक शिक्षा का सिद्धांत ।

अब एक शेष प्रश्न यह रह जाता है कि इस शिक्षा का व्यावहारिक स्वरूप कैसा हो? स्वाभाविक है ऐसी शिक्षा किसी मानासिक नियम के बंधन से या पुस्तकों के पठन –पाठन एवं पाठशाला के कार्यक्रम से नहीं बँधी होगी । आत्मा की ही भाति वह एक अत्यधिक उन्मुक्त वातावरण में सरिता के प्रवाह की तरह बहेगी । उसकी गति भी काल से, मास से, या पुस्तकों की सूचना से निधारित नहीं होगी बल्कि अंतरात्मा की गति और अवस्थाओं से निधार्रित होगी । 'निर्बाध –प्रगति' (फ्री प्रॉग्रेस) के स्वरूप के विषय में माता जी ने स्पष्ट कहा है, -एक ऐसी प्रगति जो किसी नियम , आदत या पूर्वधारण से नहीं बल्कि आत्मा से प्रदर्शित होती है।' श्रीअरविन्द भी इस सत्य को सिद्धांत यह है कि कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता ।' अर्थात, शिक्षा बाहर से आरोपित सूचनाओं का आदान –प्रदान नहीं है । शिक्षा है , - आत्मोद्घाटन । और आत्म प्रकाश के आलोक से सारे संसार का, स्वयं सत्ता और चेतना का नवीन मूल्यांकन तथा इस सही मूल्यांकन के बाद सत्य की शक्ति और सार्मथ्य से, सत्य के आवाह्न से एक नव –निर्माण ।

यह संभव तभी होगा जब शिक्षक और माता –पिता स्वयं आत्मोन्मुख हों । मात्र आत्मान्मुख ही नहीं आत्म –प्रकाश से आलोकित हों , आत्माराम हों । किसी पुस्तक या प्रक्रिया से कहीं अधिक , आध्यात्मिक शिक्षा ,यहाँ तक कि जीवन मूल्यों की भी शिक्षा ,शिक्षक के ,सन्निध्य एवं सम्पर्क से दी जाती है । पुस्तकों मे लिखे और बाहर से थोपे हुए सिद्धांतों से कहीं अधिक प्रभाव जीवंत –आदर्शों का पड़ता है । हमारी आंतरिक गतियाँ , हमारे भाव , हमारी चेतना , विचार सभी कुछ हर क्षण प्रक्षिप्त होते रहते हैं और दुसरों को प्रभावित करते हैं । अगर हमनें अपने अंतर में योगाग्नि जला रखी है , अगर हम अपने आत्म –यज्ञ में अपने अंतर नित्य –कर्म होम कर रहे है तो स्वत :ही इसके संपर्क में आने वाला विद्यार्थी आलोकित हो उठेगा । उसके अंदर भी दिव्यता का कण स्पन्दित होने लगेगा । परंतु अगर हम स्वयं कामना –वासना –अंहकार –शंका –भय के धुएँ से घिरे हैं तो हमारी संतति ,हमारे सान्निध्य में आनेवाले लोग, विद्यार्थी सभी पर एक धूमिल छाया का प्रभाव पड़ेगा । चाहे हम शब्दों की और अध्यात्म- शास्त्रों की कितनी भी व्याख्या क्यों न कर लें । क्योंकि जगत का यह विधान है कि बाहर का संसार हमारे अंदर के सत्य को किसी न किसी रूप में प्रगट करता है ।बाहर की परिस्थिति हमारे अंतर –सत्य की प्रतीकमय उपज और हमारी अंतरावस्था का प्रतिबिम्ब है ।

इस व्यावहारिक रूप की तीसरी प्रणाली होगी विद्यार्थी के हृदय में मूल प्रश्नों को जगाना । मूल प्रश्न जीवन के स्रोत की तरफ संकेत देते हैं , जैसे , - मैं कौन हूँ ? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या हैं ? पृथ्वी क्यों है, इसका लक्ष्य क्या है ? मृत्यु क्यों आवश्यक है ? ज्ञान की सीमा कहाँ है ? प्रेम का अन्त क्यों होता है ? प्राण अशक्त क्यों है ? शरीर अक्षम क्यों है ? इत्यादि , इत्यादि । विद्यार्थी में इन मूल प्रश्नों को उठाना और उसे इसका उत्तर विद्या के माध्यम से, विषय के माध्यम ढूँढने में सहयोग देना, यही है आध्यापिक शिक्षा की एक प्रमुख प्रक्रिया । इसमें शिक्षक का स्थान एक अध्यापक से कहीं अधिक एक सहयोग का है , एक ऐसा सहयोग जो स्वयं बालक की तरह ईश्वर के नित नवीन रूपों के दर्शन का उत्सुक है । सर्वत्र इस ब्रह्म चेतना का स्पर्श अनुभव करना और विद्यार्थी को इस दर्शन के प्रति जागरूक करना, यह है आध्यात्मिक शिक्षा का बाह्य रूप ।

इतना ही नही उसके अंदर सत्यनिष्ठा का भाव जगाना , पूर्णता की अभीप्सा को मूर्तरूप देना , मित्थ्यात्व के प्रति सतर्क करना ताकि वह अन्धकार व प्रकाश में भेद कर सके । क्योंकि इस परा – विद्या का एक और महामन्त्र है , - है 'सत्यमेव जयते',- सत्य की विजय हो । सत्य मात्र एक मन की उत्सुकता या खोज का विषय नहीं है । सत्य सर्वंगीण है और हमारे जीवन , हमारे प्राण , हमारी भावनाओं , सारी पृथ्वी पर इसका साम्राज्य स्थापित होना है । माता जी कहती हैं कि तीन बातें बालकों को सदा याद रहनी चाहिए,-

पूर्ण सत्यनिष्ठा की आवश्यकता ।
सत्य की अंतिम विजय होती है , ऐसा अटूट विश्वास ।
सतत प्रगति की सम्भावना और उसे करने का संकल्प ।

अगर हम स्वयं को भगवती माँ की कृपा के प्रति खोल सकें तो उनकी विजय –वाहिनी , उनके विजय-ध्वज की शरण में हम अवश्य ही इस अतर्द्वन्द्व पर ईश्वर की विजय का प्रतीक बन सकते हैं । इसी में है हमारी सार्थकता और शिक्षा की सफलता । इसी में है राष्ट्र -चेतना का उत्थान और व्याथित , अव्यवस्थित , रोगग्रस्त समाज का नव –निर्माण ।

श्रीअरविन्द का राष्ट्र चिंतन

- डॉ.अनिल बाजपेयी

(श्रीअरविन्द की 150वीं जन्म जयंती पर श्री अरविन्द आश्रम – दिल्ली शाखा ने 12, 13, एवं 14 अगस्त 2021 को त्रि-दिवसीय वेबिनार "संभावमी युगे यूगे" का आयोजन किया था। इस वेबिनर में 6 वक्ताओं ने अलग-अलग विषयों पर अपने विचार रखे थे। इन वक्ताओं के वक्तव्यों को हम सिलसिलेवार इस पत्रिका में प्रकाशित कर रहे हैं। इसकी प्रथम कड़ी का प्रकाशन जनवरी-फरवरी 2022 के अंक में हुआ था। यहाँ इस अंक में इसकी पाँचवीं कड़ी प्रस्तुत है।)

मैं श्रीअरविन्द की 150वीं जन्म जयंती पर उनके चरणों में अपना प्रणाम निवेदित करता हूँ। हम श्री अरविन्द का यंत्र बनकर जन्म-जन्मांतर से उनका ही कार्य कर रहे हैं। श्री अरविन्द एवं श्रीमाँ के चरणों में अपनी प्रार्थना निवेदित करता हूँ। मैं श्रीअरविन्द आश्रम – दिल्ली के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। यह आश्रम दीपशिखा बन कर समाज को प्रेरित कर रहा है, जिसे अपने पथ की अनेक बाधाएं रोक नहीं पायी हैं। कोरोना के संकट के दौरान भी वेब पर लगातार वार्ताएं और आज इस त्रि-दिवसीय वार्ता, संभवामी यूगे युगे, का आयोजन किया है। इसके साथ ही श्रीअरविन्द सोसाइटी, हिन्दी क्षेत्रीय समिति के उपाध्यक्ष और इस कार्यक्रम के संचालक श्री मनोज शर्मा के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करता हूँ जो श्री अरविन्द एवम श्रीमाँ के कार्य के प्रति समर्पित हैं।

आज की वार्ता का विषय है 'श्रीअरविन्द का राष्ट्रीय चिंतन'। इस विषय पर श्रीअरविन्द का एक प्रसिद्ध सूत्र वाक्य है और यह उनके राष्ट्रवादी चिंतन का सार है। श्रीअरविन्द कहते हैं 'भारतीय विचार, भारतीय चरित्र, भारतीय दृष्टि, भारतीय ऊर्जा और भारतीय महानता को फिर से पाना है और उन सारी समस्याओं को जो सारे संसार को परेशान कर रही हैं भारतीय मनीषा, भारतीय बुद्धिमत्ता और भारतीय' दृष्टिकोण से सुलझाना यही हमारी दृष्टि में राष्ट्रीयता का उद्देश्य है।

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि विश्व जिन समस्याओं से जूझ रहा है, उनका निराकरण भारतीय बुद्धिमत्ता और भारतीय दृष्टिकोण से करना होगा। यही हमारी दृष्टि में राष्ट्रियता का उद्देश्य है। मैं समझता हूँ कि श्रीअरविन्द का राष्ट्रवादी दर्शन, चिंतन इस सूत्र में समाहित है। इसके पूर्व कि हम श्रीअरविन्द के राष्ट्रीय चिंतन पर चर्चा करें, वास्तव में राष्ट्र का सही अर्थ है, आज के वर्तमान संदर्भ में, वर्तमान विश्व में एक ऐसा देश जहां के नागरिकों में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एकता और समरसता का भाव विद्यमान हो और इस एकता और समरसता की भावना का निरंतर चिंतन ही राष्ट्रवादी भावना कहलाती है। हमारे देश में कोई आंतरिक धारा, आंतरिक ऊर्जा,

आंतरिक तार, अदृश्य लहर में विद्यमान है और हम निश्चित रूप से राष्ट्र हैं। हालांकि हमारे सामने अनेक बाधाएं हैं। बाह्य रूप में ये अदृश्य धाराएँ दिखाई नहीं पड़ती हैं जो अंदर-ही-अंदर प्रवाहित हो रही हैं, लेकिन विद्यमान तो हैं। अगर नीरज भाला फेंकने में प्रथम आता है या कोहली शतक जड़ता है, हमें कभी नहीं लगता कि वह दिल्ली का है और मैं मथुरा का हूँ। या वह उस प्रदेश का है और मैं किसी और प्रदेश का हूँ। हम भी उतना ही हर्ष मनाते हैं जितना कि उनके घर वाले या उनसे भी ज्यादा ही मनाते हैं। आतंकवाद कश्मीर में फैलता है, सेव यहाँ उत्तर प्रदेश में महंगे हो जाते हैं। बाबरी मस्जिद अयोध्या में टूटती है, पहला दंगा मुंबई में शुरू होता है। हमारी सीमा के अंदर थोड़ा सा विवाद हजारों फुट की ऊंचाई पर कारगिल में होता है और चिंतित होता है पूरा देश। एक-एक क्षण, एक-एक फीट, एक-एक इंच के लिए हम सब चिंतित रहते हैं। क्या यह चिंतन राष्ट्रवादी चिंतन नहीं है? इतनी विविधताओं के रहते, इतनी विषमताओं के रहते यह अंदरूनी धारा पूरे देश के अंदर एक साथ, एक समान प्रवाहित होती है। मैं यह कहना चाहूँगा कि आधुनिक युग में आधुनिक राष्ट्रवाद की जो परिकल्पना है इसका प्रारम्भ यूरोप में रेनेन्सा के बाद में हुआ। वहाँ पुनःजागरण का एक युग आया था। उसके बाद फ्रांस की क्रांति हुई, चर्च की शक्ति का अंत हुआ। राजवंश का पतन हुआ, उपनिवेशवाद आया, अपनी भाषा, अपनी जाति, अपनी आत्मा, अपने गौरव को पुनः पाने की जो आकांक्षा यूरोप में पैदा हुई वे इस नव राष्ट्रवाद के प्रेरक तत्व थे। लेकिन इनके पीछे कोई शुद्ध और सच्चे लक्ष्य या आदर्श नहीं थे। और हम पाते हैं कि इन लक्ष्यों के अभाव में मुश्किल से डेढ़ सौ वर्ष के अंदर-अंदर इस राष्ट्रवाद को उग्र-राष्ट्रवाद में परिवर्तित होने में समय नहीं लगा। इसका परिणाम हुआ, प्रथम विश्व युद्ध और फिर द्वितीय विश्व युद्ध और उसके बाद आज विश्व का दो गुटों में विभाजन और फिर आज का वैश्विक तनाव। यह जो नव-राष्ट्रवाद यूरोप की परिकल्पना के कारण प्रारम्भ हुआ उसका यह परिणाम आज हमें दिखाई पड़ रहा है।

अब हम आते हैं भारतीय संदर्भ में। भारत में जो राष्ट्रवाद है वह ऋषियों के विशुद्ध चिंतन से उत्पन्न परंपरा का परिणाम था। भारत राष्ट्र के निर्माण का लक्ष्य लगभग पाँच हजार वर्ष पुरानी सांस्कृतिक परंपरा और प्रयासों की ऐसी गौरव गाथा है जिसे श्रीअरविन्द ने पूर्णता प्रदान की। एक बात आश्चर्यजनक है कि यूरोप के छोटे-छोटे राज्य के विपरीत, हम जानते हैं कि भारत एक विशाल भूखंड है जिसमें अनेक यूरोपीय देश समा जाएँ और यह आज ही नहीं विष्णु ब्रह्मसूत्र, जो एक अति प्राचीन ग्रंथ है, में भी इस देश को अनेक देशों का समूह कहा गया है। यह एक आश्चर्य की बात है कि अपनी संस्कृति के उषा काल में ही राष्ट्रवाद की भावना बीज रूप में विद्यमान थी। मैं यह बताना चाहूँगा कि यह हमारी शस्य-श्यामला भारत भूमि इतिहास के लंबे अंतराल में अपनी विविधता पूर्ण समृद्धता के कारण बाहरी आक्रांताओं द्वारा बार-बार पद दलित की गई। लगभग साढ़े पाँच हजार वर्ष के ज्ञात इतिहास में भारत राष्ट्र की अस्मिता की अग्नि परीक्षा बार-बार हुई। शक, हूण, कुषाण, चिंगताई, उजबेक, तातार, तुर्क, अफगान, मुग़ल, मंगोल, डच, फ्रांसीसी, अंग्रेज़ जैसी न जाने कितनी विदेशी शक्तियाँ इस देश पर आक्रमण करने आईं और यह उनकी प्रिय आखेट स्थली बन गई।

केवल बाह्य आक्रमण ही नहीं, विविधतापूर्ण विशाल भारत समाज में आंतरिक संघर्षो, मत-मतांतरों, जाति-धर्म, संप्रदायों और राजवंशों के संघर्षों ने भी पतन और क्षरण की बहुत सी परिस्थितियाँ पैदा कीं। इन सब के बावजूद भारत आज भी जिंदा है, प्रगतिशील है। हम सिंधु और सरस्वती घाटी के निवासी जो शिव की पूजा करते थे, मूर्ति पूजक थे, हम वही सिंधु घाटी की धरोहर साथ लेकर चलने वाले लोग हैं। 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहां हमारा।'

तो यह क्या कारण है? वह कारण यह है कि हमारी संस्कृति में आत्म-शोधन का गुण विद्यमान है। यह हमारी संस्कृति एक सरिता है जिसका बहता हुआ पानी सब को आत्मसात किए हुए है। यह जो आत्म-शोधन का गुण हमारी संस्कृति में बीज रूप में विद्यमान है उसमें इस भारतीय सभ्यता को, भारतीय संस्कृति को और हम भारत-वासियों को इतिहास के इस लंबे काल में सुरक्षित रखा और प्रगतिशील भी रखा।

इतिहास गवाह है कि जब-जब आक्रांताओं ने, आक्रमणकारियों ने आक्रमण किये तब प्रवाह-शील भारतीय समाज ने, समाज में जो भी विकार उत्पन्न हुए उनके शोधन के लिये आत्म-शोधन आंदोलन आरंभ किया।

अगर हम इतिहास की एक छोटी सी झलक देखें तो पायेंगे कि छठी शताब्दी ईसा-वर्ष के पूर्व, यानी आज से लगभग ढाई हजार वर्ष से भी ज्यादा, सनातन धर्म की जो जटिलताएँ हुईं उसके खिलाफ आर्य-द्रविड़, शैव-वैष्णव संघर्ष उत्पन्न हुए। उन विकारों के कारण जैन और बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। इस्लाम के आक्रमण के बाद चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी तक समाज-सुधारक आंदोलन आये जिसमें कबीर, सूरदास, तुलसी, चैतन्य, नानक, रैदास आदि समाज सुधारक हुए। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि व्यवस्था के विरुद्ध हुए इन आंदोलनों की मूल आत्मा धार्मिक प्रवृत्तियों का शोधन था, जिसने समाज और राजसत्ता का भी शोधन किया।

इसी प्रकार ईसाइयत, अंग्रेज़ियत और यूरोपीय बुद्धिवाद के विरुद्ध आरंभ हुआ उन्नीसवीं शताब्दी का पुनर्जागरण आन्दोलन जिसके नायक राजा राम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, दयानन्द, एनिबेसेंट, सरसैयद अहमद खान, रामकृष्ण परमहंस, हेनरी विवियन देरोजियो, विवेकानंद आदि थे। ये अँग्रेजी सत्ता के विरुद्ध कोई क्रांतिकारी आंदोलन नहीं था। यह एक सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पुनर्जागरण का आंदोलन था। और इस सांस्कृतिक आंदोलन के गर्भ से भारत की राष्ट्रीय राजनीति के आंदोलन का जन्म हुआ। और इस आंदोलन ने जिस राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म दिया आरंभ में वह राष्ट्रियता याचना पंथी थी, भीरु थी, स्वराज नहीं सुराज की बात करती थी।

अब यहाँ पर भारतीय इतिहास के क्षितिज में उदय होता है एक जगमगाते हुए नक्षत्र की तरह श्रीअरविन्द का। उनके तेज से, उनकी आभा से भारत का राष्ट्रीय तेज, भारत का राष्ट्रीय चरित्र प्रकट हुआ। श्रीअरविन्द ने आते ही, विदेश से लौटने के साथ ही कुछ ही समय के अंदर अपनी सशक्त लेखनी, अपने संवादों, अपने भाषणों से कायरता को वीरता में, निराशा को आशा में और निष्क्रियता को सक्रियता में और विभिन्न जन समूहों, विचार धाराओं में विभाजित देश को एक राष्ट्र में परिणित कर दिया। एक राष्ट्र को विकसित करने का संकल्प श्रीअरविंद ने उस पराधीन भारत में लिया।

यह सत्य है कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उषा काल से ही इस भारतीय प्रायः द्वीप में राष्ट्र तत्व का बीज विद्यमान था। ऋग्वेद में अनेक जगहों पर राष्ट्र शब्द का प्रयोग है। वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहितः जैसी बौद्धिक ऋचायें रची गईं। जननी जन्म भूमिष्च, स्वर्गादपि गरीयसी का उद्घोश हुआ। गायन्ति देवा किल गीत कानी धन्यास्तुते भारत भूमि भागे - का गान हुआ। इसके साथ-साथ सप्त-संभव, सप्त-पुरी, चार धाम, कुछ ऐसी अवधारणायें थीं जिन्होंने सारे देश को चारों दिशाओं में जोड़ने का प्रयास कर रही थी। हमारे तीर्थ, हमारी अनिवार्यता बताई गयीं। यानी आरंभ से ही हमारे ऋषियों ने जो रचना की, हमारी संस्कृति में जो बीज रूप में विद्यमान था वह इस महान राष्ट्र की एकता की अवधारणा थी। और इसी तरह से राजनीतिक दृष्टिकोण से भी राजसूय यज्ञ की परिकल्पना रही हो, अश्वमेध यज्ञ की परिकल्पना रही हो, सम्राट बनाने के लिए बाजपेयी यज्ञ की परिकल्पना रही हो, हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक और अरब सागर से लेकर बंगाल की खड़ी तक राजनीतिक एकता और राज्य में हमारी प्राचीन इतिहास, भावना और संस्कृति में विद्यमान थी।

हम यह भी देखते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व यूनानी आक्रमण हुआ और उसमें जो पराजय मिली, उस समय भले ही खंडित भारत रहा हो लेकिन भारत को एक ध्वजा के अंदर लाने के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य के माध्यम चाणक्य ने प्रयास किया। अपने युग में सम्राट अशोक ने प्रयास किये, चन्द्र्गुप्त, समुद्रगुप्त ने भी प्रयास किये। इन्होंने अपने युग में प्रभावी प्रयास किये। परंतु राष्ट्रीय भावना की जो आधारशिला श्रीअरविन्द ने रखी वह और किसी ने नहीं रखी। वह अद्वितीय थी, अपूर्व थी।

श्रीअरविन्द के पहले राष्ट्र के निर्माण के जो भी प्रयास हुए उसमें धार्मिक तत्वों का प्रयोग था, राजनीतिक तत्वों का प्रयोग था, सामाजिक तत्वों का प्रयोग था और सांस्कृतिक तत्वों का प्रयोग था। लेकिन श्रीअरविन्द ने जिस नव राष्ट्रवाद, जिसमें जिस माटी का, तत्व का प्रयोग था वह तत्व था आध्यात्मवाद का। उसे हम निशंक होकर आध्यात्मिक राष्ट्रवाद कह सकते हैं। उन्होंने अपने मौलिक चिंतन से यह निष्कर्ष निकाल लिया कि आध्यात्मिकता ही भारतीय मन की सर्व पूंजी है। यह उनके शब्द हैं। और इसीलिये उन्होंने अध्यात्म को ही भारतीय राष्ट्रवादी भावना के विकास का आधार बना लिया। वे तत्कालीन पराधीन भारत के युग द्रष्टा थे, पराधीन भारत के राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिये श्रीअरविन्द ने कुछ आधार तत्व अपनाये।

श्रीअरविन्द ने राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिये आध्यात्मिक शक्तियों के विकास पर बल दिया। श्रीअरविन्द ने कहा है कि हिन्दू बहुल प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का धनी भारत देश की अंतरात्मा का स्पर्श किए बिना जन जागरण असंभव था। अतः श्री अरविन्द ने आध्यात्मिकता को ही राष्ट्रवाद का आधार बनाया। श्रीअरविन्द ने लिखा है कि जब हम भारत के अतीत पर दृष्टिपात करते हैं तो आध्यात्मिकता से पहले भारत में युगों तक अंतर्दृष्टि और आध्यात्मिकता के अभ्यास के द्वारा शक्तिशाली चैत्य प्रवृत्ति की अनंतता को जकड़ लेने की तीव्र भावना का विकास हुआ। परिणाम स्वरूप भारतीय संस्कृति की अत्यधिक ओजस्विता, जीवन शक्ति, जीवन ऊर्जा, उमंग और लगभग कल्पनातीत सृजनशीलता कुछ एक शताब्दी नहीं, साढ़े तीन हजार वर्ष तक अजस्र रूप में यह धारा निरंतर बहती रही।

यह निश्चित रूप से आश्चर्य में डाल देती है। चाहे गणराज्य हो, चाहे साम्राज्य हो, दर्शन शास्त्र हो, संख्या शास्त्र, योग शास्त्र, न्याय, योग-विशिष्ट, मीमांसा, वेद, विज्ञान, धर्म-शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, संगीत-कला, नृत्य-कला, चित्र-कला, मूर्ति-कला, स्थापित्य-कला, ब्राह्मण ग्रंथ, वेद, पुराण, संहिताएँ, महाकाव्य, गणित, व्यापार प्रणाली, मुद्रा प्रणाली, न्याय प्रणाली, वर्णाश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ, ज्योतिष कला, खगोल शास्त्र, यानी कि एक संस्कृति इतनी विविध क्षेत्रों के अंदर अपने शिखर पर पहुँच सकती है। इसका कारण यह था कि जो भी इस संस्कृति को आगे बढ़ा रहे थे वे आध्यात्मिकता के भाव को लिए हुए थे। और आध्यात्मिकता में निहित अनंतता की भावना विद्यमान थी। 'ज्यों-ज्यों डूबे श्याम जल, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय'। जैसे-जैसे हम अंदर जाते हैं वैसे विशालता और अनंतता की ओर बढ़ते हैं। यह जो ऊर्जावान विविधता हमने पाई वह विद्यमान रही साढ़े तीन हजार वर्ष तक। इसलिए श्रीअरविन्द ने उस समय के राष्ट्रवाद का शोध अपने राष्ट्रवाद के आध्यात्मिकता को बनाया।

श्रीअरविन्द ने भारत का जो राष्ट्रीय आंदोलन था उसको शुद्ध भौतिक और राजनीतिक स्तर से ऊपर उठाया। श्रीअरविन्द का राष्ट्रीय राजनीति में ज्यों ही प्रादुर्भाव हुआ तब उनके राजनीतिक और राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के कारण भारत का राष्ट्रवादी आंदोलन जो अब तक अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त वर्ग का एक बौद्धिक मनोविनोद बन गया था, वह अब कोटि-कोटि का जन आंदोलन बन गया क्योंकि अब इसका आधार आध्यात्मिकता बन गया। अध्यात्म ही वह एक प्रेरक तत्व था जिससे श्रीअरविन्द ने एक शक्ति सम्पन्न, ऊर्जावान और तेजस्वी राष्ट्रीय भावना का पुनर्स्थापन किया। सुभाष चंद्र बोस लिखते हैं कि जब मैं 1913 में बंगाल आया तब तक श्रीअरविन्द एक पौराणिक पुरुष बन चुके थे। मैंने किसी भी महापुरुष के बारे में लोगों में इतने उत्साह और इतने आनंद के साथ बोलते हुए नहीं सुना। सुभाष कहते हैं कि उनके पत्र हम अपने दल में ज़ोर-शोर से पढ़ते थे और हमें विश्वास हो गया था कि प्रभावशाली राष्ट्र सेवा के लिए आध्यात्मिक प्रबोध आवश्यक है।

इन शब्दों पर हमें ध्यान देना होगा – 'प्रभावशाली राष्ट्र सेवा के लिए आध्यात्मिक प्रबोध आवश्यक' है। श्रीअरविन्द ने कहा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता है, केवल एक संवैधानिक व्यवस्था का परिवर्तन या पुनर्निरूपण नहीं है बल्कि यह एक मूलभूत आध्यात्मिक आवश्यकता है। 10 नवंबर 1907 में वन्देमातरम के अपने लेख में वे लिखते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन का वास्तविक उद्देश्य, राजनीतिक जागरण का अनिवार्य साधन अपनाकर राष्ट्र की आध्यात्मिक महिमा को पुनर्स्थापित करना है। श्री अरविन्द की राष्ट्रीय भावना में भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के प्रति गौरव का भाव निहित था।

श्री अरविन्द ने कहा कि भारत की केंद्रीय अवधारणा है शाश्वत की। जड़-भौतिक में जो आत्म-बन्ध है उसके प्रति प्रस्फुटन की। श्री अरविन्द ने कहा कि भारतीय ऋषियों ने अमरत्व के रहस्य को पा लिया। आध्यात्मिकता के प्रति भारत की तीव्र उत्कंठा ही उसकी सभ्यता को श्रेष्ठ मूल्य प्रदान करती है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि अपनी आध्यात्मिकता की शक्ति के असीम भंडार से भारत को वह राष्ट्रीय उपलब्धि प्राप्त होगी जी कभी मैजिनी ने इटली के लिए प्राप्त की थी। काबूर, मैजिनी और गैरीबाल्डी जिसने इटली को स्वतंत्र कराया, उसी का उल्लेख कर रहे हैं।

यहाँ मैं श्रीमाँ की भी एक वाणी का उल्लेख विशेष रूप से करना चाहूँगा। श्रीमाँ ने बताया है कि प्रत्येक राष्ट्र

की अपनी एक अंतरात्मा होती है। और मनुष्य के अंतरात्मा की तरह राष्ट्र की अंतरात्मा समस्त गतिविधियों के पीछे विद्यमान होती है। एक बिलकुल मौलिक चिंतन है जिसे अनेक लोग नहीं जानते हैं। वे कहती हैं कि किसी राष्ट्र के संकटपूर्ण मुहूर्त में यह अंतरात्मा की शक्ति ही अग्निपरीक्षा से गुजरने का नेतृत्व देती है। श्रीमाँ ने जैसा बताया कि ब्रिटेन पर स्पेनिश आर्मडा के आक्रमण के समय या इंग्लैंड द्वारा फ्रांस को पराधीन बनाने के प्रयास के समय इसी प्रकार भारत में उसी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा पुनर्निर्माण की एक स्थायी क्षमता है जो अनेक अग्नि परीक्षाओं से गुजर चुकी है।

हम एक जेन या फेनिक्स पक्षी का जिक्र सुनते हैं, जिसे जला दो, मार दो वह अपनी राख से फिर उठ खड़ा होता है। भारतीय संस्कृति के अंदर, श्रीमाँ ने बताया कि वह तत्त्व विद्यमान है जिसमें पुनरुत्थान की स्थायी क्षमता है। तमाम अग्नि परीक्षाएँ आईं लेकिन हम फिर से उस जेन पक्षी की भांति, उस फेनिक्स पक्षी की भांति अपनी राख़ के साथ हम फिर उठ खड़े हुए।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि हम जितनी गहराई से देखेंगे हमें उतना ही विश्वास हो जायेगा कि हम में एक वस्तु की कमी है और वह है शक्ति। शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति, धार्मिक शक्ति और सर्वोपरि है आध्यात्मिक शक्ति। आध्यात्मिक शक्ति ही समस्त शक्तियों का अक्षय अनंत भंडार है। यह श्री अरविन्द ने कहा।

श्रीअरविन्द ने आगे कहा अगर तुम अपने मन को यूरोपीय विचारों के अधीन रखो तो ऐसे आदर्श को तुम हृदय से नहीं पोस पाओगे। श्रीअरविन्द कहते हैं कि भौतिक दृष्टिकोण से तुम कुछ भी नहीं हो और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से तुम सब कुछ हो।

वे आगे कहते हैं आर्य विचार, आर्य अनुशासन, आर्य चरित्र और आर्य जीवन को पुनः प्राप्त करो। वेदान्त, गीता और योग को प्राप्त करो। श्री अरविन्द ने यह भी कहा कि यूरोपीय शिक्षा, यूरोपीय तंत्र, यूरोपीय मंत्र भारत देश में सफल नहीं होंगे। हम राष्ट्र से कहते हैं कि यह ईश्वर की इच्छा है कि हम हमीं रहें यूरोपीय न बनें। यह महत्वपूर्ण है कि हम, हम ही रहें, हम यूरोप न बनें। हमें लौट कर अपने भीतर ही शक्ति के स्रोत खोजने होंगे। आध्यात्मिक ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभूति को पुनः प्राप्त करना होगा और एक आध्यात्मिक जागृति के द्वारा ही राष्ट्र के वास्तविक आत्मभाव का पुनर्जागरण होगा।

श्रीअरविन्द से एक बार एक प्रश्न पूछा गया था कि आपने राजनीति क्यों छोड़ी? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने जो कहा वह बड़ा रोचक है। उन्होंने कहा कि मैंने राजनीति इसलिए छोड़ी क्योंकि राजनीति असली भारतीय वस्तु है ही नहीं, यह तो यूरोप से आई है। पर अब समय आ गया है कि हमें परछाईं को पकड़ने के बजाय पदार्थ को पकड़ना होगा। हमें भारत की वास्तविक आत्मा को जाग्रत करके उसकी प्रगति में ही सारे प्रयासों को ढालना होगा। उन्होंने बहुत ही सुंदर प्रयोग किया 'हमें परछाईं को नहीं पदार्थ को पकड़ना होगा'। और आज हो क्या रहा है, हम परछाईं को पकड़ रहे हैं।

श्री अरविन्द ने कहा कि भारत की आध्यात्मिकता, भारत की साधना, भारत की तपस्या ज्ञान, शक्ति के

चीजें हैं जो हमें स्वतंत्र और महान बनाएगी। श्रीअरविन्द ने आगे बहुत प्रेरक शब्दों का प्रयोग किया, वे लिखते हैं कि 'योगी को राजनेता के भीतर से अभिव्यक्त होना होगा'। रामदास को शिवाजी के साथ एक शरीर में पैदा होना होगा। बुद्धि और आत्मा को शक्ति और पवित्रता के साथ घुल-मिल जाना होगा।

श्रीअरविन्द एक जगह लिखते हैं कि युगों-युगों का भारत अभी मरा नहीं है, न ही मर सकता है। अभी उसे मनुष्यों के लिए बहुत कुछ करना शेष है। भारत कोई अंग्रेजों के रंग में जंग लगी हुई जाति नहीं है। बल्कि वह एक शक्ति है जो बहुत ही जल्दी अपनी अंतरात्मा को प्राप्त कर लेगा और आध्यात्मिकता ही भारत की एकमात्र राजनीति है और श्रीअरविन्द आगे लिखते हैं कि सनातन धर्म ही उसका एकमात्र स्वराज है।

श्रीअरविंद ने अध्यात्म की चेतना के विकास के लिये मातृभूमि को दैवीय रूप में प्रस्तुत किया। श्रीअरविन्द ने उस पराधीन भारत में आध्यात्म की चेतना के विकास के लिए मातृभूमि को दैवीय रूप में प्रस्तुत करने का आदर्श प्रस्तुत किया। श्रीअरविन्द कहते हैं कि जब लोग अपने देश को एक जड़ पदार्थ का टुकड़ा, एक चारगाह, खेत, पर्वत, वन और नदियां समझते हैं तो मैं अपने देश को अपनी माँ मानता हूँ, उसकी आराधना करता हूँ। श्रीअरविन्द ने सौ वर्ष पूर्व यह प्रश्न पूछा, 'यदि एक राक्षस एक पुत्र की माँ की छाती पर चढ़कर प्रहार करेगा तब पुत्र क्या करेगा। प्रतिरोध – शक्ति से, ज्ञान से। इसीलिए श्रीअरविन्द का आह्वान था कि राष्ट्र तो तब निर्मित होगा जब राष्ट्र स्वाधीन होगा, स्वतंत्र होगा।

1883 में प्रकाशित बंकिम चंद्र चटर्जी के प्रसिद्ध उपन्यास का अप्रैल 1907 में प्रकाशित 'वंदेमातरम' में जिक्र करते हुए श्री अरविन्द ने लिखा कि इस पुस्तक ने हमें एक नये भारत की सृष्टि करने वाला संजीवनी मंत्र 'वन्देमातरम' दिया है।

बंकिम चंद्र ने आनंद मठ में वन्देमातरम की जो परिकल्पना की थी श्रीअरविन्द ने उसके गुह्य और धार्मिक भावना को ग्रहण किया। इसका उदाहरण दुर्गा स्तोत है। श्री अरविन्द ने उस समय के राजनीतिक परिदृश्य में भारत माँ को शक्ति के आह्वान के लिए दुर्गा के रूप में स्मरण किया। हम सब दुर्गा-स्त्रोत का पाठ करते समय निरंतर भारत माँ के चरणों में भारतवासियों की प्रार्थना का भाव मिलता है।

पाठ लंबा है लेकिन एक छोटा सा उदाहरण समीचीन होगा – 'हे माते दुर्गे! योगशक्ति का विस्तार कर, तेरी प्रिय आर्य संतान हम, हम में लुप्त शिक्षा, चरित्र, मेधाशक्ति, तपस्या, ब्रह्मचर्य, हे दुर्गातिनाशिननि जगदम्बे! मनुष्य की सहायता के लिए प्रकट होओ'। ये दुर्गा के रूप में भारत माता का आह्वान दिखाई पड़ रहा है।

श्री अरविन्द ने कहा कि भारत इस भूमि की मिट्टी, नदियां, पहाड़ नहीं हैं। श्रीअरविन्द कहते हैं कि भारत

एक जीवंत सत्ता है उतनी ही जीवंत जितना शिव। वे कहते हैं कि भारत माता शिव की कोटि की देवी हैं। और अगर चाहें तो मानव देह के रूप में प्रकट हो सकती हैं। मैंने माँ के संस्मरण में कहीं पढ़ा था, माँ कहती हैं भारत माँ के विषय में श्रीअरविन्द ने कहा कि हम एक माँ के गर्भ से पैदा हुए हैं, एक माँ की गोद में निवास करते हैं, और एक माँ के पंचभूत में मिल जाते हैं। एक हजार विवाद होंगे फिर भी माँ की पुकार पर एक हो जाएंगे।

श्रीअरविन्द की वाणी है - राष्ट्र क्या है? हमारी भारत भूमि क्या है? वह न एक भूमि का टुकड़ा है, न वाणी का अलंकार है, न मस्तिष्क की परिकल्पना है, वह एक महान शक्ति है जिसका निर्माण करोड़ों शक्तियों को मिलाकर हुआ है। मुझे याद आया कि एक बार पंडित नेहरू कलकत्ता में एक जगह 'भारत माता की जय' के नारे लग रहे थे, तब उन्होंने जानना चाहा कि भारत माता है कौन? और लगभग इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया था उन्होंने 'हम करोड़ों भारतवासियों की शक्ति है'। हम करोड़ों भारतवासियों को मिलाकर भारत माता का निर्माण हुआ। श्रीअरविन्द कहते हैं यह ठीक वैसे ही जैसे करोड़ों देवताओं की शक्ति को एकत्रित कर के महीषासुरमर्दिनी प्रकट हुई, वह शक्ति जिसे हम भवानी-भारती कह कर पुकारते हैं।

श्री अरविन्द ने आध्यात्म के द्वारा राष्ट्र निर्माण की भावना के विकास के लिए उस समय के स्वतन्त्रता आंदोलन को भी देव प्रेरित और देव नियोजित रूप में विकसित करने का संकल्प लिया। 1905 में बंग-भंग आंदोलन के समय श्रीअरविन्द ने अपने भाषण में कहा, आज से लगभग 115 वर्ष पूर्व - राष्ट्रियता स्वयं परमात्मा से उद्भूत एक धर्म है, न तो इसका दमन हुआ है और न ही आगे हो सकेगा। राष्ट्रियता अमर है क्योंकि यह मर्त्य मानव की सृष्टि नहीं है और हमारे आंदोलन का नेतृत्व स्वयं विधाता कर रहे हैं। तो, उन्होंने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को देव प्रेरित बताया ताकि वह भाव जाग्रत हो, वह धार्मिकता, पवित्रता का भाव जाग्रत हो।

श्रीअरविन्द ने कहा, यह राष्ट्रियता है क्या? यह केवल एक राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। राष्ट्रियता एक धर्म है जो ईश्वर प्रदत्त है। श्रीअरविन्द ने कहा हम कोई सामान्य जाति नहीं हैं। हम उन माताओं की सन्तानें हैं जिन्होंने अपने पति का अनुसरण करते हुए, मुसकुराते हुए, स्वयं को पवित्र अग्नि में समर्पित कर दिया था। हम कठिनाइयों का स्वागत शारीरिक शक्ति से अधिक आध्यात्मिक शक्ति से करते हैं और हम ही वे लोग हैं जिनके मध्य भगवान ने स्वयम को प्रकट किया है, ताकि हम एक महान राष्ट्र के रूप में विकसित हो सकें।

श्रीअरविन्द का लेखन झटके देना वाला है। युवाओं और देश के निर्माण के लिए है। उनकी और एक अद्भुत वाणी देखिये, वे लिखते हैं कि नया राष्ट्रवाद अपनी बांध लांघ गया है। एक ही योग्यता जिसकी वह मांग करता है - एक ऐसा शरीर जो भारतीय जनित योनि में तैयार हुआ हो, ऐसा हृदय जिसमें भारत के प्रति भावना हो, एक ऐसा मस्तिष्क जो उसकी महानता के लिए विचार और आयोजन कर सके, एक जिव्हा जो उसके नाम की स्तुति कर सके और वे हाथ जो उसके लिए लड़ाई कर सके। यह नया राष्ट्रवाद भारत में एक क्षत्रिय का, एक योद्धा का पुनर्जन्म है।

भारत की स्वतन्त्रता के लिए, श्रीअरविन्द जानते थे कि राष्ट्र निर्माण का लक्ष्य तब तक पूरा नहीं हो सकेगा

जब तक भारत स्वतंत्र न हो। और इसीलिए उन्होंने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए युवकों को देवी स्वरूपणी भारत माँ के लिए आत्मबलिदान का आह्वान किया। श्री अरविन्द ने आत्मत्याग और माता के चरणों में बलि की भावना से राष्ट्रवाद को संयुक्त कर दिया। श्रीअरविन्द ने एक जगह लिखा है मेरा मिशन मठों, तपस्वियों, सन्यासियों का सृजन करना नहीं है बल्कि शक्ति सम्पन्न लोगों की आत्माओं को कृष्ण और काली की लीलाओं के लिए वापस लाना है।

1905 में श्रीअरविन्द की भवानी-मंदिर के सृजन की अवधारणा यही थी कि किसी पर्वतीय प्रदेश में, किसी गुप्त स्थान में भारत माता की प्रतीक भवानी माँ का मंदिर बने जिसके पुजारी ऐसे ब्रह्मचारी, तेजस्वी भारतीय युवक हों जो भारत माता की मुक्ति के लिए शरीर और आत्मा से प्रतिबद्ध हों। और स्वतन्त्रता के लिए पुनर्जागरण के अग्रज बनें।

श्री अरविन्द ने आह्वान किया - माँ हमसे सर्वस्व की मांग करती है जब तक राजा सुरथ ने अपनी शिराओं का रक्त अर्पित नहीं कर दिया माँ ने उसे दर्शन देकर वर मांगने को नहीं कहा। जब तक शिवाजी अपने मस्तक चढ़ाने को तैयार नहीं हुए माँ भवानी उनके सामने प्रकट नहीं हुईं। ये श्री अरविन्द ने लिखा है।

1907 में नेशनल कॉलेज में विदाई के समय श्रीअरविन्द ने विद्यार्थियों को कहा - किसी देश के इतिहास में राष्ट्र के लिए ऐसे क्षण आते हैं जब भगवान उसके आगे एक ऐसा कार्य, एक ऐसा लक्ष्य रखते हैं। हमरी मातृभूमि के लिए ऐसा काल आ गया है जब उसकी सेवा से बढ़ कर और कोई चीज नहीं हो सकती। अगर तुम अध्ययन करो तो उसके लिए, अपने आप को प्रशिक्षित करो तो उसके लिए, आजीविका कमाओ ताकि तुम उसके लिए जी सको, विदेश जा कर ज्ञान लाओ ताकि तुम भारत माता की सेवा कर सको, काम करो ताकि भारत माता समृद्ध हो, कष्ट झेलो ताकि भारत माँ प्रसन्न हो। सब इसी सलाह में समाया हुआ है।

आज हम देखते हैं कि, 1907 का यह भाषण सौ वर्षों से ज्यादा हो गए, लेकिन क्यों लगता है कि आज के वर्तमान भारत के लिए भी ठीक यही सीख दी जा सकती है।

श्रीअरविन्द ने शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत योगदान किया है। अभी हमने देखा दो वर्ष पूर्व हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी है उसमें श्री अरविन्द की अनेक अवधारणाएँ, उनका आदर्श है, उनका बहुत समावेश है। श्रीअरविन्द ने लिखा था कि हमारे आदर्श पुरुष हमारे बीच के होने चाहिए, इस नयी शिक्षा पद्धति में आया है। श्रीअरविन्द ने कहा था कि हमें अंदर से बाहर की तरफ जाना चाहिए, वह भी आया है। मातृ-भाषा शिक्षण का सिद्धान्त होना चाहिए, वह भी कुछ आया है। शिक्षा को खंडों में नहीं बांटना चाहिए, इसका भी समावेश हुआ है। शारीरिक शिक्षा, मन की शिक्षा, प्राण की शिक्षा, चैत्य भाव को प्रबल करना, जो श्रीअरविन्द का शिक्षा के दर्शन

का उद्देश्य है यह सब कुछ नयी शिक्षा नीति में आया है। एक राष्ट्र के निर्माण के लिए युवाओं को कैसा होना चाहिए, कैसी शिक्षा होने चाहिए। श्री अरविन्द ने, उस युग द्रष्टा ने उस समय अपनी शिक्षा दर्शन के द्वारा उस समय घोषित किया। आज जब भारत अग्रसर हो रहा है विश्व के मंच पर तब हम वह सब कुछ अपना रहे हैं, कितना सुखद संयोग है।

श्रीअरविन्द ने उस समय अपनी वाणी में आध्यात्मिक राष्ट्र के रूप में भारत को विश्व गुरु बनाने का आदर्श प्रस्तुत किया। विवेकानंद के समान श्रीअरविन्द ने भी घोषणा की कि भारत को विश्व गुरु बनाना है। यही संसार में सत्य को ला सकता है। श्री अरविन्द का विचार था कि मानव जाति के आध्यात्मिक जागरण में समस्त भू मण्डल में एक दिव्य संदेश देने में भारत की एक बहुत महती और अनिवार्य भूमिका है। और उन्होंने लिखा की पूर्ण स्वतन्त्रता ही भारतीय राष्ट्रवाद का लक्ष्य है। श्री अरविन्द ने एक जगह लिखा कि हमारी जाति नष्ट नहीं हो सकती, भारत नष्ट नहीं हो सकता क्योंकि हमें मानव जाति के भविष्य के लिए उसके सबसे श्रेष्ठ शानदार भूमिका के लिए चुना गया हैं। भारत वर्ष से ही सारे संसार का धर्म निकलेगा वह सनातन धर्म सब धर्मों में दर्शन और विज्ञान में समन्वय करेगा। श्रीअरविन्द ने लिखा कि भारत राष्ट्रों का गुरु है, मानव आत्मा का, उसके गंभीर रोगों का चिकित्सक है, चिकित्सा करेगा।

श्रीअरविन्द ने आध्यात्मिक राष्ट्र वाद के द्वारा, उस परिकल्पना के द्वारा, मानव एकता और राष्ट्रियता का एक अद्भुत आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किया। श्रीअरविन्द की राष्ट्रियता का प्रेरक तत्व अध्यात्म था क्योंकि आध्यात्मिकता में ही अनंतता का बोध बीज रूप में विद्यमान है। अतः श्रीअरविन्द ने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद और वैश्विक एकता के भावों को एक साथ मिलाया। इसी आध्यात्मिक तत्वों के कारण ही हमारे ऋषियों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम' का उद्घोष किया। यह वह तत्व था जो आध्यात्म से प्रेरित होता है। अनन्तता और वैश्विक भाव के कारण श्रीअरविन्द का यह आध्यात्मिक राष्ट्रवाद स्वतः ही अंतर्राष्ट्रीयतावाद का प्रेरक बन गया है। आज हम अंतर्राष्ट्रीयता के युग में जी रहे हैं। श्रीअरविन्द का यह अंतर्राष्ट्रीयतावाद हमें उस अंतर्राष्ट्रीयता की तरफ ले जाएगा, उसका प्रेरक बनेगा।

हमें एक बात का स्मरण रखना होगा और इतिहास इस बात का गवाह है कि अगर राष्ट्रियता में प्रेरक तत्व सही न हों जैसा कि यूरोप में हुआ, तो आध्यात्मिकता का अभाव होगा, अगर आध्यात्मिक और दर्शन का अभाव होगा, उस पवित्र भाव का अभाव होगा तो उग्र राष्ट्रवाद में परिवर्तित होने में देर नहीं लगेगी। जर्मनी में चाहे हिटलर हो या इटली में मुसोलिनी हो, उन्होंने जिस राष्ट्रवाद का प्रयास किया वह बहुत जल्दी ही उग्र राष्ट्रवाद में परिवर्तित होकर विश्व युद्ध का कारण बना। जबकि श्रीअरविन्द के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का प्रमुख आदर्श मानवता और वैश्विक मानवता की चेतना का स्तर उठाना है। वे मानवता भी देख रहे हैं और सिर्फ मानवता ही नहीं देख रहे हैं जैसा कि अशोक ने अपने शिलालेख में लिखा है कि इहलोक और परलोक दोनों का मुझे ध्यान रखना है। उसी तरह श्रीअरविन्द केवल यही नहीं देख रहे हैं कि अपने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के द्वारा मानवता का आदर्श पूरा होगा बल्कि उसके साथ-साथ वे वैश्विक मानवता की चेतना का भी उत्थान होगा। यह श्रीअरविन्द, वह युग द्रष्टा अपनी दृष्टि में देख रहे हैं और अपनी उसी दृष्टि का प्रयास किया।

अपने उत्तरपाड़ा भाषण में बोलते हुए कहा कि भारत का अभ्युत्थान केवल अपने लिए नहीं है अपितु मानव जाति के उत्थान के लिए है। यह भारत के उत्थान का प्रमुख आदर्श था।

भवानी मंदिर में श्रीअरविन्द ने लिखा भारत का पुनर्जन्म होना चाहिए क्योंकि संसार के भविष्य को उसके पुनर्जन्म की आवश्यकता है। भारत के उत्थान से ही समस्त विश्व का भावी धर्म जाग्रत होगा और एक ऐसे शाश्वत धर्म का प्रस्फोटन होगा जिसमें सभी धर्मों, सभी दर्शन, सभी विज्ञानों का समावेश करेगा, और समस्त मानव जाति को एकात्म कर देगा। विश्व का जो आध्यात्मिक नव जागरण होगा उसमें भारत की देव नियोजित भूमिका का निर्वाहन श्रीअरविन्द के राष्ट्रवाद के अनुरूप होगा। वास्तव में श्रीअरविन्द का राष्ट्रवाद केवल देश या राष्ट्र के प्रति नहीं था, वह पूरी मानवता से जुड़ा हुआ था।

विश्व के आध्यात्मिक जागरण की भी उसमें परिकल्पना थी। श्रीअरविन्द ने अपनी राष्ट्रियता को सीमित या संकुचित या पुनर्जागरण वाद में परिवर्तित होने नहीं दिया। उनके लिए भारत की मुक्ति का लक्ष्य विश्व के आध्यात्मिक गुरुत्व का भार ग्रहण करना था, इसलिए भारत मुक्त हो ताकि भारत विश्व का आध्यात्मिक नेतृत्व कर सके। उनका जो आध्यात्मिक राष्ट्रवाद है, श्रीअरविन्द का उसमें निश्चित रूप से अंतर्राष्ट्रीयता का बीज विद्यमान है।

निष्कर्ष में श्रीअरविन्द ने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का मार्ग दर्शन करके ही एक स्वतंत्र भारत आज जहां हम खड़े हैं हमारे समाज के अंदर बहुत सारी विविधतायें, बहुत सारी चुनौतियाँ हैं। चाहे धार्मिक उन्माद हों, चाहे नैतिकता हो, चाहे हिंसा हो, शिक्षा संबंधी समस्यायें हों, पर्यावरण संबंधी समस्यायें हों, इन सब को हम श्रीअरविन्द के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद में शामिल देखते हैं।

कभी सोहनलाल द्विवेदी ने महात्मा गांधी के बारे में कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं आज मुझे वे याद आ रही हैं, प्रभु श्री अरविन्द का स्मरण करके और उनके चरणों में अर्पित करके, उसका गान करके में अपनी बात समाप्त करूंगा
हे युग परिवर्तक, युग संस्थापक, युग संचालक हे युगाधार

युग निर्माता, युग मूर्ति! तुम्हें, युग-युग तक युग का नमस्कार।

तब हम श्रीअरविन्द के उस आध्यात्मिक राष्ट्रवाद, भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण को अपना-कर विश्व के महान राष्ट्रों की श्रेणी में अपने को खड़ा करने का संकल्प लें ताकि हम श्रीअरविन्द के सपनों के अनुरूप इस विश्व का नेतृत्व कर सकें यही श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के चरणों में प्रार्थना है।

आश्रम - गतिविधियाँ

29-30 सितम्बर 2022 को आश्रम प्रांगण में मान्निकिरण विद्यालय के शिक्षकों के साथ आए विद्यार्थियों के लिए कला एवं शिल्प पर आधारित कार्यशाला का आयोजन किया गया था जिसमें आश्रम के व्यवसायिक प्रशिक्षणार्थियों ने पूर्ण सहयोग देते हुए कार्यशाला को सफलतापूर्वक संपादित किया।

2 सितंबर 2022 को आश्रम प्रांगण में श्री सुरेंद्र नाथ जोहर अर्थात हम सबके चाचा जी की पुण्यतिथि के अवसर पर उनकी समाधि के निकट हवन संपन्न किया गया तथा संध्या समय मेडिटेशन हॉल में उन्हें स्मरण करते हुए भक्ति संगीत समर्पित किया गया।

24 सितंबर को आश्रम प्रांगण में ब्लैक रॉक संस्था के सौजन्य से एक कला और शिल्प पर आधारित कार्यशाला आयोजित की गई । इस कार्यशाला में श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा के व्यवसायिक प्रशिक्षण के विद्यार्थियों ने सहयोग करते हुए कार्यशाला को संपन्न कराया।

1 अक्टूबर को आश्रम के चिकित्सा के प्रमुख संचालक डॉ.तरुण बवेजा जी का जन्म दिवस उत्साह पूर्वक मनाया गया । तदर्थ ध्यान कक्ष में विशेष कार्यक्रम के आयोजन में बड़ी संख्या में लोग उपस्थित थे तत्पश्चात सभी ने आश्रम के भोजन कक्ष में प्रसाद स्वरुप भोजन ग्रहण किया ।

आश्रम प्रांगण में श्री औरोबिन्दो सोसाइटी के सौजन्य से दो दिवसीय (2 अक्टूबर 2022- 3 अक्टूबर 2022 तक) आयोजित किया गया, प्रशिक्षण - कार्यक्रम में लगभग 75 लोगों ने भाग लिया।

2 अक्टूबर 2022 गांधी जयंती के अवसर पर महात्मा गांधी को स्मरण करते हुए उनके जीवन के मूल्यों को आधार बनाते हुए विशाल शरीर पर एक बड़े पैमाने पर श्रमदान किया गया जिसमें आश्रम के सदस्यों के साथ-साथ बाहर से आकर कई अनुयायियों ने भी भाग लिया।

3 अक्टूबर 2022- आसन ध्यान कक्ष में श्री स्वर्गीय श्री अशोक सेठी जी के देहावसान के उपरांत प्रार्थना सभा संपन्न हुई जहां उनके आत्मीय जनों ने ईश्वर से प्रार्थना की तथा उनके प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त किया ।डॉ रमेश बिजलानी जी ने उपस्थित जनों के मध्य मृत्यु के प्रति श्री मां के कथनों द्वारा आत्मीय जनों को सांत्वना के शब्द कहे ।

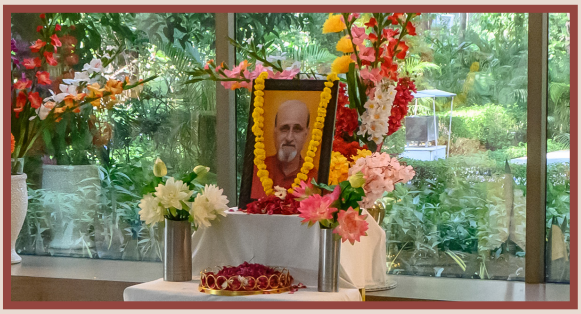

6 अक्टूबर 2022- आश्रम में स्थापित मुक्त शिक्षा प्रणाली पर आधारित विद्यालय मीरामबिका विद्यालय में शिक्षकों के साथ एक प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया । यह कार्यशाला मीराम्बिका में प्रशिक्षण पाने वाले वाले शिक्षण- प्रशिक्षणार्थियों के लिए आयोजित की गई थी जिन्हें इसके द्वारा लाभान्वित होने का अवसर मिला ।

7 -8 अक्टूबर 2022 को आश्रम प्रांगण में प्रकृति विद्यालय के शिक्षकों के साथ आए विद्यार्थियों के लिए कला एवं शिल्प पर आधारित कार्यशाला का आयोजन किया गया था जिसमें आश्रम के व्यवसायिक प्रशिक्षणार्थियों ने पूर्ण सहयोग देते हुए कार्यशाला को सफलतापूर्वक संपादित किया।

16 अक्टूबर 2022- श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा के स्थाई सदस्य डॉ रमेश बिजलानी उर्फ रमेश भैया का जन्म दिवस बड़े ही उत्साह पूर्वक मनाया गया। समारोह में बाहर से बड़ी संख्या में अतिथि भी आए और उन्होंने रमेश भैया के 75ven जन्मदिवस पर उन्हें शुभकामनाओं के साथ बधाई श्रम दी। ध्यान-कक्ष में सत्संग के दौरान उस दिन डॉ रमेश बिजलानी ने श्रोताओं के सम्मुख अपने जीवन की 75 वर्षों की यात्रा का बड़ा ही रोचक एवं प्रभावपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया। तारा दीदी ने डॉ रमेश बिजलानी जी को स्नेहिल बधाई के साथ श्री माँ की सुंदर तस्वीर भेंट की, तत्पश्चात सभी अतिथि-गण आश्रम के भोजन कक्ष में गए और उन्होंने प्रसाद स्वरूप दोपहर का भोजन ग्रहण किया।

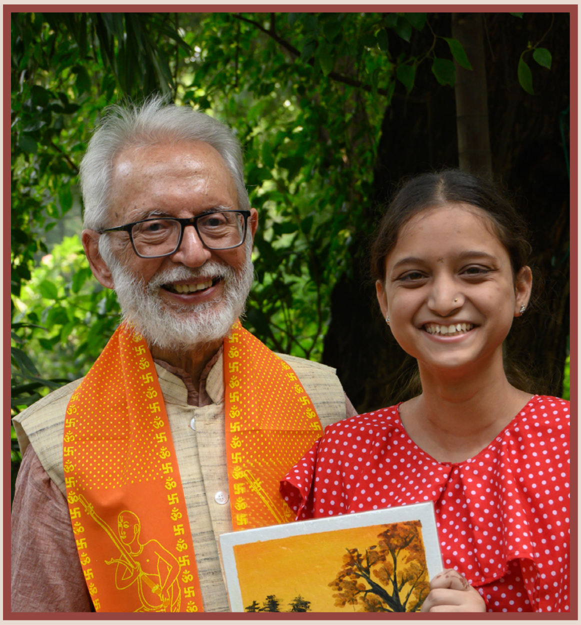

24 अक्टूबर 2022 को समस्त आश्रम परिवार ने उत्साह और हर्ष पूर्वक दिवाली का ज्योति पर्व मनाया। बड़े पैमाने पर साफ -सफाई के साथ संध्या होते-होते पूरा आश्रम-प्रांगण दीयों की झिलमिलाहट से जगमग आ उठा । संध्या समय दीप जलाने के पश्चात संपूर्ण आश्रम परिवार ध्यान-कक्ष में एकत्र हुआ जहां भक्ति संगीत के साथ तारा दीदी ने सस्वर पाठ करते हुए श्री माँ के वचनों को प्रस्तुत किया। श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा की तरफ से आश्रम के सभी सदस्यों, कर्मियों तथा स्वयंसेवकों को दीपावली के उपहार प्रदान किए गए।

श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा में आए हुए बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा (26 से 29 अक्टूबर)तीन दिन ध्यान कक्ष में पूरे दिन मंत्र-उच्चारण होता रहा, जिससे समस्त पर्यावरण में शुद्धता और अलौकिक अनुभूति का आभास होता रहा।